

एम.ए.एच.आई. -04



वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. - 04

ऐतिहासिक चिन्तन - 1

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड-1

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 1 इतिहास का स्वरूप तथा क्षेत्र	5-16
इकाई 2 इतिहास प्रगति के समरूप	17-35
इकाई 3 इतिहास, विज्ञान और नैतिकता	36-66
इकाई 4 इतिहास और समाज विज्ञान निश्चयात्मक अभिगम	67-80

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार

निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता

इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता

पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष
मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

डा. श्रीमती कमलेश शर्मा

इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. बी.आर. गोवर

पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. जे.पी. मिश्रा

पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी

डा. बी.के. शर्मा

विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डा. याकूब अली खान

इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. जे. चौबे

इतिहास विभाग, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी(उ.प्र.)

प्रो.के.सी. जैन

इतिहास विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन(म.प्र.)

प्रो. धर्मन्द्र गोयल

दर्शन विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़ (भारत)

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. बृजकिशोर शर्मा

विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)बी.के. शर्मा
निदेशक(अकादमिक)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी अधिकारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - Oct 2012 MAHI-04/ISBN No.-13/978-81-8496-263-5

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई -1

इतिहास का स्वरूप तथा क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

- 1.0 उद्देश्य
- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 इतिहास एवं प्रकृति
- 1.3 इतिहास एवं समाज
- 1.4 राजनीतिक इतिहास
- 1.5 संवैधानिक इतिहास
- 1.6 आर्थिक इतिहास
- 1.7 सामाजिक इतिहास
- 1.8 राजनयिक इतिहास
- 1.9 सांस्कृतिक इतिहास
- 1.10 धार्मिक इतिहास
- 1.11 औपनिवेशिक इतिहास
- 1.12 संसदीय इतिहास
- 1.13 सैनिक इतिहास
- 1.14 कामनवेल्थ का इतिहास
- 1.15 विचारों का इतिहास
- 1.16 इतिहास दर्शन
- 1.17 मानव स्वतंत्रता तथा मानव प्रगति का इतिहास
- 1.18 प्रगति का इतिहास
- 1.19 विश्व इतिहास
- 1.20 निष्कर्ष
- 1.21 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 1.22 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य :

इस इकाई का उद्देश्य इतिहास के स्वरूप तथा क्षेत्र की व्याख्या करना है । इसके अध्ययन से हमें ज्ञात होगा कि इतिहास का स्वरूप क्या है, जिससे हम इतिहास की वैज्ञानिक समझ प्राप्त करने में सफल होंगे । यह भी स्पष्ट हो सकेगा कि इतिहास समाज विज्ञान के अन्य विषयों से किस प्रकार भिन्न है । इतिहास के क्षेत्र से यहां तात्पर्य यह है कि इतिहास विद्या के कितने प्रकार हैं तथा विभिन्न इतिहासों की विषय सामग्री एवं विधि क्या है ? अतः यह इकाई इतिहास अध्ययन की पहली सीढ़ी है ।

1.1 प्रस्तावना :

आदि काल से आधुनिक युग तक इतिहास क्षेत्र का स्वरूप निरन्तर परिवर्तनशील रहा है, इसके विकसित स्वरूप का एकमात्र आधार विभिन्न युगों की सामाजिक आवश्यकताएं रही हैं, प्रारम्भ में इतिहास चिन्तन का उद्गम अतृप्त ज्ञान तृष्णा को तृप्त करने के उद्देश्य से हुआ था । इस उद्देश्य से प्रेरित होकर प्राचीन इतिहासकारों ने इतिहास का अध्ययन किया । इतिहास के जनक हेरोडोटस ने अतीत के मानवीय कार्यों को वर्तमान तथा भविष्य के लिए सुरक्षित करने के उद्देश्य से अध्ययन किया । इस प्रकार उसने मानवीय कृत्यों तथा उपलब्धियों की कहानी प्रस्तुत की । रेनियर ने उचित ही कहा है कि प्रत्येक युग में समाज इतिहासकारों से कुछ प्रश्न करता है और इतिहासकार नवीन साक्ष्यों के आलोक में अतीत से उनका उत्तर प्राप्त कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है । इसीलिए कालिक वुड ने इतिहास को प्रश्नोत्तर माना है । सभी इतिहासकारों ने प्रत्येक युग में इतिहास लेखन की आवश्यकता को स्वीकार किया है । उनका एकमात्र तात्पर्य सामाजिक मूल्यों तथा आवश्यकता के अनुसार इतिहास का प्रस्तुतीकरण था । हेरोडोटस ने महाकाव्य युग में इतिहास की सामाजिक आवश्यकता को कहानी मात्र समझा था । वैज्ञानिक युग की सामाजिक आवश्यकता ने, व्यूरी को, "इतिहास विज्ञान है, न कम और न अधिक" के रूप में प्रस्तुत करने के लिए बाध्य किया । मध्य युग में जब "धर्म" की प्रधानता स्वीकार की गई, सेंट आगस्टाइन ने सम्पूर्ण विश्व को ईश्वर का नगर कहा ।

मानव समाज में विकास की प्रक्रिया निरन्तर रही है । इस विकास प्रक्रिया के साथ-साथ सामाजिक आवश्यकताएं भी विकसित होती रही हैं । समाज से संबंधित इन्हीं प्रश्नों का उत्तर इतिहास ने दिया है । आदिकाल से मानवीय प्रक्रिया का स्वरूप संघर्षमय रहा है । यह उत्थान विकास तथा पतन की वक्ररेखीय गति ही इतिहास गति मानी गई है । इतिहास क्षेत्र के अन्तर्गत जब इतिहासकार किसी घटना का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत करता है तो उसके समक्ष तीन प्रश्न प्रमुख होते हैं - घटना क्या है; वह कैसे घटी तथा क्यों घटी ? इतिहासकार इसी का विश्लेषण प्रस्तुत करता है । इतिहासकार के दो कार्य प्रमुख हैं - तथ्यों का संकलन तथा उसका विश्लेषण । एक का स्वरूप, विषयनिष्ठ और मानवतावादी है तथा दूसरे का वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ है । ट्रेवेलियन के अनुसार इतिहासकार अपने इतिहास के प्रस्तुतीकरण में तीन प्रमुख उत्पादनों का प्रयोग करता है - वैज्ञानिक, परिकल्पनात्मक तथा साहित्यिक; यद्यपि मानवीय कार्यों तथा उपलब्धियों पर प्रकृति का अध्ययन इतिहासकार के क्षेत्र के बाहर है । इतिहास क्षेत्र के अन्तर्गत मनुष्य के एक साधारण कार्य से लेकर उसकी विविध उपलब्धियों का वर्णन होता है।

1.2 इतिहास एवं प्रकृति :

यद्यपि प्रकृति का अध्ययन इतिहास क्षेत्र से बाहर है । फिर भी इतिहास में प्रकृति की पूर्ण उपेक्षा सम्भव नहीं जब कालिंगवुड ने इतिहास को विचार का इतिहास स्वीकार किया तो प्रो० वाल्श ने सबसे पहले इसका विरोध किया । उन्होंने कहा है कि मनुष्य के कार्यों तथा उपलब्धियों पर प्रकृति अथवा प्राकृतिक घटनाओं का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है । भूकम्प, बाढ़, अकाल, अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि प्रायः मानवीय कार्यों एवं उपलब्धियों को नियन्त्रित करती है ।

पर्वत, नदी, झील तथा समुद्र ने मानवीय समाज के भाग्य को निर्धारित किया है। मध्य एशिया की पठारी तथा अनुपजाऊ भूमि ने मंगोलों को लड़ाकू तथा लुटेरा बना दिया। यूनान के द्वीप समूहों ने उनके हृदय में उपनिवेश समपना की प्रवृत्ति को जन्म दिया। भारतवर्ष में सिंधु, गंगा, यमुना तथा हिमालय की भूमिका इतिहास में महत्वपूर्ण रही है। वाटरलू, प्लासी तथा पानीपत का महत्व नहीं होता, यदि नैपोलियन, क्लाइव तथा बाबर से इन स्थानों का सम्बन्ध नहीं होता। कावेरी नदी का महत्व कर्नाटक के इतिहास में महत्वपूर्ण रहा है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रकृति तथा भौगोलिक परिस्थिति के परिवेश में ही मानवीय कार्यों एवं उपलब्धियों का अध्ययन इतिहास क्षेत्र के अन्तर्गत होना चाहिए।

1.3 इतिहास एवं समाज :

इस प्रकार इतिहास क्षेत्र का स्वरूप सामाजिक आवश्यकताओं अनुसार सदैव विकसित होता रहा है। हेरोडोटस से दवायनवी तक यदि इतिहास लेखन की विवेचना की जाय तो इसके निरन्तर परिवर्तित स्वरूप का अनुमान हो सकता है। जैसे प्रत्येक कवि अपने युग का कवि होता है, उसी प्रकार प्रत्येक इतिहासकार अपने युग का इतिहासकार होता है। कवि की ही भांति इतिहासकार की वाणी युग की वाणी होती है।

अतीतकालीन समाज का पूर्ण चित्रण ही इतिहास का प्रमुख उद्देश्य होता है। किसी भी समाज से संबंधित भौगोलिक दशा, वातावरण, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, संवैधानिक कानून, न्याय व्यवस्था, सुरक्षा व्यवस्था आदि का विवरण आवश्यक हो जाता है। समाज से संबंधित सभी प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। इतिहासकार से अपेक्षा की जाती है कि इन सभी विषयों का उचित विवरण समाज के समक्ष प्रस्तुत करें। यदि समाज का क्षेत्र विस्तृत है, तो एक इतिहासकार के लिए इन सभी प्रश्नों का उत्तर देना सम्भव नहीं है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है। आज का इतिहासकार इतिहास के किसी विशिष्ट विषय का विशिष्ट ज्ञान रखता है। वह अपने ज्ञान से संबंधित सामाजिक, आर्थिक आदि विषय का उत्तर देता है। इतिहास क्षेत्र का वर्गीकरण वैज्ञानिक युग की देन है। ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विद्याओं ने इतिहास के सामान्य ज्ञान की अपेक्षा विशिष्ट ज्ञान की उपादेयता को सिद्ध किया है। परिणामस्वरूप इतिहास का विभाजन न केवल प्राचीन, मध्ययुगीन तथा आधुनिक काल में किया गया है, बल्कि इसके अन्तर्गत अनेक छोटी से छोटी शाखाओं पर शोध करके इतिहासकारों ने विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त किया है। इस प्रकार इतिहास का क्षेत्र निरन्तर विकसित होता जा रहा है।

डेवी के अनुसार, इतिहास का वर्गीकरण उपयोगी तथा स्वाभाविक है। इसका एकमात्र उद्देश्य विशेष तथा परिवर्तित घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करना है। शिलर ने भी इतिहास क्षेत्र के वर्गीकरण के संबंध में कहा है कि विस्तृत वर्गीकरण दुर्लभ है। फिर भी इतिहासकारों ने अतीतकालिक घटनाओं के आधार पर सामाजिक प्रश्नों का उत्तर देने के लिए इतिहास क्षेत्र का वर्गीकरण किया है।

1.4 राजनीतिक इतिहास :

राजनीतिक संस्थाएं समाज की रंगमंच हैं, जहां महापुरुष अपने कार्यों को प्रदर्शित करते हैं। समाज के जीवन में इसका अधिक महत्व है। ए.एल.राउज ने इसे इतिहास की रीढ़ माना है। जनसाधारण की इस संस्था में युग पुरुष तत्कालीन घटनाओं को नियन्त्रित करने के लिए अपनी इच्छाओं की अभिव्यक्ति करता है। सम्राट अशोक, अकबर महान, महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू के कार्यों एवं उपलब्धियों का प्रदर्शन राजनीतिक रंगमंच पर ही हुआ है। इन जननायकों ने अपने कार्यों के परिवेश में तत्कालीन समाज के भाग्य का निर्माण किया। इनमें प्रायः युद्ध, सन्धियां तथा क्रान्ति के नेतृत्व का वर्णन मिलता है, परन्तु ये घटनाएं इतनी महत्वपूर्ण होती हैं कि इसमें तत्कालीन मानवीय समाज की इच्छा निहित रहती है तथा मानवीय कार्यों पर इसका व्यापक प्रभाव देखा गया है। अतीत संबंधी महापुरुषों के कार्यों, उपलब्धियों, सफलता तथा असफलता से युग पुरुष शिक्षा ग्रहण करते हैं तथा वर्तमान एवं भावी कार्यों के लिए समाज का पथ प्रदर्शन करते हैं। इस प्रकार राजनीतिक रंगमंच पर महापुरुषों की जीवनी, कार्य तथा उपलब्धियां वर्तमान को प्रकाशित करती हैं तथा भविष्य के लिए मार्ग प्रदर्शन का कार्य करती हैं। लेनिन की जीवनी रूसी राज्य क्रान्ति की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। इसी प्रकार इंग्लैण्ड के 17वीं सदी के गृह युद्ध तथा क्रान्ति के अध्ययन के लिए क्रामवेल की जीवनी का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का अध्ययन महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, बाल गंगाधर तिलक तथा गोपाल कृष्ण गोखले की जीवन गाथा के अभाव में अधूरा रहेगा। इन महापुरुषों ने राजनीति के रंगमंच पर ही अपने कार्यों को प्रदर्शित किया है। थ्यूसिडिडीज़, गिबन तथा मैकाले की महत्वपूर्ण रचनाओं का आधार राजनीतिक इतिहास ही रहा है। प्रारम्भिक इतिहासकारों ने राजनीतिक इतिहास को ही महत्वपूर्ण समझकर इतिहास लेखन किया है, क्योंकि इसका विवरण तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता थी। यह इतिहास की एक महत्वपूर्ण शाखा है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इतिहासकारों ने यह अनुभव किया कि महापुरुषों की जीवनी के साथ सर्वसाधारण मानव समाज के योगदान का भी अध्ययन आवश्यक है। क्योंकि जनसाधारण ही महापुरुषों की शक्ति होते हैं। उनके सहयोग से ही महान विभूतियों ने सफलता प्राप्त की। अतः राजनीतिक इतिहास में उनके कार्यों का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। एक चीनी कहावत है कि किसी युग के महापुरुष समाज के लिए कलंक तथा दुर्भाग्य पूर्ण होते हैं। उनकी कृतियों तथा उपलब्धियों में जनसामान्य का महत्वपूर्ण योगदान होता है। नैपोलियन के शासन काल में जनसामान्य ने अपना खून बहाया और अपना बलिदान दिया, परन्तु ख्याति उन्हें न मिलकर नैपोलियन को प्राप्त हुई। मिल के पिरामिडों से लेकर अमेरिका की अन्तरिक्ष उपलब्धियों तक राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने में सर्वसाधारण का योगदान है। भारतवर्ष की स्वतन्त्रता केवल जन नायकों के प्रयास का ही परिणाम नहीं है, बल्कि असंख्य भारतवासियों ने इस गौरवपूर्ण उपलब्धि में अपने बलिदान से, अपने बल से, अपने त्याग से योगदान किया है। किसी महापुरुष के उत्थान तथा हर और निर्दयी शासक के प्रतिरोध के पीछे जनसाधारण वर्ग की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। यही कारण है कि वर्तमान युग में ऐतिहासिक

शोध का विषय दरबारी जीवन तथा शासकों का जीवन न होकर ग्रामीण अंचलों से संबद्ध सर्वसाधारण की जीवनी तथा उनका कार्य महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता जा रहा है। अब समय आ गया है कि राजनीतिक इतिहास में जनसामान्य की भूमिका का अध्ययन किया जाय। आधुनिक युग में उसको सूक्ष्म इतिहास की संज्ञा दी गयी है।

1.5 संवैधानिक इतिहास :

जी. एन. क्लार्क के अनुसार, संस्थाओं का इतिहास अध्ययन का केन्द्र बिन्दु है। इसका राजनीतिक इतिहास से गहरा सम्बन्ध है। इसके अध्ययन का स्वरूप वस्तुनिष्ठ है, जबकि राजनीतिक इतिहास विषयनिष्ठ होता है। सामाजिक जीवन में इसका स्थान महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह सामाजिक जीवन का आधार है। आज बीसवीं सदी में कुछ इतिहासकारों ने संवैधानिक इतिहास तथा प्रशासकीय इतिहास में अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। हैलम, कार्निवाल लेविस, अर्सकोन में, तथा मैटलैण्ड ने संवैधानिक इतिहास लिखकर इतिहास क्षेत्र को विकसित करने का प्रयास किया है। इन विद्वानों ने उसके अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की, क्योंकि इसने जनसामान्य को प्रभावित किया है। मनुस्मृति, हमुराबी का कोड, जस्टिस निपन कोड, कोड ऑफ नैपोलियन, मैकाले का इण्डियन पेनल कोड का प्रभाव जनसामान्य पर पड़ा है। ब्लैकस्टोन कृत कमेन्ट्रीज ऑफ लॉ ऑफ इंग्लैण्ड तथा पी. वी. काणे का "धर्मशास्त्र का इतिहास" उस वर्ग की महान उपलब्धियाँ हैं।

1.6 आर्थिक इतिहास :

आर्थिक इतिहास को महत्वपूर्ण बनाने में कौंदरसे, कोम्टे, बर्कले तथा कार्ल मार्क्स का सर्वाधिक योगदान रहा है। कार्ल मार्क्स द्वारा इतिहास की आर्थिक व्याख्या ने अनेक इतिहासकारों को उस विषय पर सोचने के लिए बाध्य कर दिया। समाज के प्रारम्भ के साथ ही आर्थिक इतिहास का उदय होता है। समाज ने अपनी आजीविका के साधनों को किस प्रकार उत्पन्न किया, इसका ज्ञान आर्थिक इतिहास प्रदान करना है। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात इसकी महत्ता अत्यधिक बढ़ गयी है। आर. एच. टानी तथा एलीन पावर ने सबसे पहले आर्थिक इतिहास लिखा है। जी. एन. क्लार्क के अनुसार आधुनिक युग में आर्थिक इतिहास ने इतिहास क्षेत्र के अन्तर्गत एक उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

आर्थिक इतिहास के माध्यम से वर्तमान समाज इतिहासकारों से आर्थिक प्रश्न पूछता है। सर विलियम ऐशले के अनुसार आर्थिक विचार स्वयमेव ऐतिहासिक तथ्य होते हैं। एन. एस. बी. ग्रास के अनुसार आर्थिक इतिहास का तात्पर्य मानवीय आजीविका के साधनों से है। आजीविका के साधनों के उत्पादन में मनुष्य किस प्रकार प्रयास करके अधिकतम संतोष प्राप्त करता है; वे आर्थिक इतिहास के प्रमुख तत्व होते हैं। आर्थिक इतिहास के क्षेत्र में मनुष्य के कार्यों को प्रभावित करने वाले विचार, समाज का उद्देश्य, विभिन्न सामाजिक वर्गों का पारस्परिक सम्बन्ध तथा व्यवहार का अध्ययन आर्थिक इतिहास का विषय होता है। इतिहासकारों का प्रयास यह देखना है कि आर्थिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप किस प्रकार सामाजिक संबंधों तथा मानवीय व्यवहार में परिवर्तन होते रहे हैं, क्योंकि इतिहासकार का अध्ययन मानवीय व्यवहार तथा कार्यों के परिवेश में सामाजिक परिवर्तन है। यह इतिहास भी आर्थिक कहानी है।

ए. एल. राउज ने लिखा है कि इतिहास की रोचकता को सजीव रखने के लिए उस विषय को ग्राफ, रेखांकित चित्रों तथा मानत्रित से युक्त नहीं करना चाहिए। सर विलियम ऐशले ने आर्थिक इतिहास के स्वरूप संबंध में लिखा है - मनुष्य ने आजीविका के साधनों के उत्पादन अधिकतम संतोष प्राप्त करने के लिए क्या किया, यही आर्थिक इतिहास मनुष्य के रूप में वह आदि काल से एकाकी या व्यक्तिवादी नहीं रहा है, किसी न किसी रूप में संगठन तथा सामूहिकता के तथ्य इसकी गतिविधियों में संचालित हैं। जी. एन. क्लार्क के अनुसार तकनीकी यंत्र तथा कारखानों द्वारा उत्पादित पदार्थों से यह स्पष्ट हो जाता है - पदार्थ का अन्तिम स्वरूप सामूहिकता तथा संगठन का परिणाम होता है। श्रम, अभियन्ताओं, भूगर्भशास्त्रियों तथा पूंजीपतियों के सहयोग से किसी वस्तु का उत्पादन सम्भव है। वस्त्र उत्पादन में किसान, कोयला, मशीन, श्रम तथा पूंजीपति के पारस्परिक सहयोग की अपेक्षा होती है। इतिहासकार का कर्तव्य हो जाता है कि इन सभी पक्षों पर विचार करे। आजकल व्यावसायिक इतिहास का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। पूंजीपतियों के विकास का भी इतिहास होता है। टाटा, बिड़ला तथा डालमिया परिवारों का विकास आर्थिक इतिहास का रोचक विषय हो सकता है।

बैंकों का विकास इतिहास क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। सर जान क्लेफम ने बैंक ऑफ इंग्लैण्ड तथा ई. टी. मैकडर मोर ने वेस्टर्न रेलवे का इतिहास लिखा है। मिस सदरलैण्ड ने अठारवीं सदी का व्यापारी तथा रिचर्ड पेरीज़ ने वेस्ट इण्डिया फारचून लिखकर आर्थिक इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

आर्थिक इतिहास के अन्तर्गत आजीविका के साधन, कृषि, यातायात के साधन, उद्योग, व्यापार, भू-राजस्व आदि विषयों का अध्ययन होता है। इरविन ने आर्थिक इतिहास के अस्तित्व के लिए संघर्ष तथा कार्ल मार्क्स ने आर्थिक नियतिवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके विषय को रोचक एवं आकर्षक बनाने का प्रयास किया है। 1917 की रूसी राज्य क्रान्ति के बाद आर्थिक इतिहास का महत्व द्रुतगति से बढ़ा है। मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित अनेक भारतीय विद्वानों ने आर्थिक इतिहास की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन किया है। हिरेन मुखर्जी, रजनी पामदत्त, कोसाम्बी तथा उरफान हबीब ने आर्थिक इतिहास लेखन को एक नवीन दिशा प्रदान की है।

आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त का आधार गणित तथा सांख्यिकी है। इतिहास में इन सिद्धान्तों का प्रयोग इतिहास को अरुचिकर बना देगा। इतिहास को अर्थपूर्ण बनाने के लिए इनका कम से कम उपयोग आवश्यक है। गणित तथा सांख्यिकी का अधिक प्रयोग इतिहासकार को केंची तथा गॉद शैली के लिए विवश कर देगा। सम्भावना है कि इतिहास अपना अस्तित्व खो बैठेगा। वैज्ञानिक इतिहासकारों ने भी प्रतिरोध की आवश्यकता की अनुभूति की है। आर्थिक इतिहास साक्ष्यों के आधार पर उपयोगी तथा बोधगम्य होना चाहिए। इतिहासकारों से यही अपेक्षा की जाती है।

1.7 सामाजिक इतिहास

कोम्से के अनुसार इतिहास सामाजिक भौतिकशास्त्र है। इसके अन्तर्गत मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन किया जाता है। टायन्बी ने लिखा है कि इतिहास का

निर्माण सामाजिक अणुतत्वों से हुआ है । इतिहास का विकास व्यक्तियों तथा राष्ट्रों से नहीं बल्कि विभिन्न युगीन समाजों से हुआ है । अतः इतिहास की आधार शिला समाज है । सामाजिक इतिहास को सर्वाधिक लोकप्रिय बनाने का श्रेय ट्रेवेलियन को है । उनके सामाजिक इतिहास का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है । सामाजिक इतिहास की परिभाषा में ट्रेवेलियन का विचार अधिक ग्राह्य है । अतीत में मनुष्यों का दैनिक जीवन, विभिन्न वर्गों का पारस्परिक आर्थिक सम्बन्ध, परिवार का स्वरूप, गृहस्थ जीवन, श्रमिकों की दशा, प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण, सांस्कृतिक जीवन तथा सामान्य परिस्थितियों से उत्पन्न धर्म, साहित्य, संगीत, वास्तुकला, शिक्षा तथा साहित्य है । रेनियर के अनुसार सामाजिक इतिहास के अभाव में आर्थिक इतिहास की पृष्ठ भूमि तथा राजनैतिक इतिहास की कसौटी है । ट्रेवेलियन की दृष्टि में सामाजिक इतिहास के अभाव में आर्थिक इतिहास मरुस्थल तथा राजनीतिक इतिहास अवर्णनीय है ।

बीसवीं सदी के अधिकांश इतिहासकारों का ध्यान सामाजिक इतिहास ने आकृष्ट किया । सामाजिक समस्याओं के प्रति चेतना ने इतिहास के क्षेत्र में क्रान्तिकारी रुचि पैदा कर दी है । समाजशास्त्र का विकास सामाजिक इतिहास के परिवेश में हुआ है । सामाजिक विकास तथा परिवर्तन की गतियों का अध्ययन समाजशास्त्र के माध्यम से प्रारम्भ हुआ है ।

सामाजिक इतिहास की अपनी समस्याएं हैं । इसका अध्ययन रोचक है । परन्तु निरंतरता, मंदगति तथा परिवर्तन का अध्ययन अत्यन्त जटिल है । राजनैतिक परिवर्तन जीवन के सतह पर दृष्टिगोचर हैं; सामाजिक परिवर्तन भूमिगत अगोचर जलस्रोत के समान हैं । सामाजिक परिवर्तन का ही परिणाम राजनैतिक परिवर्तन होता है । एक नवीन सम, प्रधानमंत्री, नवीन संसद, राजनीतिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन करते हैं । परन्तु सामाजिक जीवन में इस परिवर्तन का प्रभाव प्रायः नगण्य होता है ।

भारतीय इतिहास में राजनीतिक उथल-पुथल के कारण अनेक राजवंशों का उत्थान तथा पतन हुआ है । राजपूतों के पतन के बाद तुर्की सुलतानों, मुगलों तथा अंग्रेजों का शासन हुआ परन्तु परिवर्तनों ने सामाजिक जीवन को प्रायः प्रभावित नहीं किया । परिणामस्वरूप भारतीय समाज का मूलस्वरूप आज भी वही है जैसा गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी के समय में था । भक्ति आन्दोलन के समाज सुधारक रामानन्द, कबीर, नानक तथा चैतन्य ने समाज सुधार के लिए अथक प्रयास किया । राजाराम मोहन राय, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू ने भी समाज सुधार का प्रयास किया । संसद तथा विधान सभाओं ने अनेक नियम पारित किए, इतने प्रयास के बावजूद भी सामाजिक स्वरूप में किसी प्रकार का क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हुआ है । यदि सामाजिक परिवर्तन को स्वीकार भी किया जाय तो भूमिगत जलस्रोत की भाँति इसकी गति इतनी मन्द और अगोचर रही है कि उसका सूक्ष्म निरूपण कठिन प्रतीत होता है । समाजशास्त्रियों ने इस परिवर्तन की गति का विश्लेषण करने का प्रयास किया है । सामाजिक इतिहास में उनका महत्वपूर्ण योग है ।

1.8 राजनयिक इतिहास

19वीं सदी के प्रारम्भ में इतिहासकारों ने राजनयिक इतिहास लेखन की आवश्यकता की अनुभूति की। इसमें राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों का वर्णन रहता है। इसमें समस्या संबंधी आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियों का उल्लेख नहीं रहता। इसके अन्तर्गत समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न राष्ट्रों के प्रयास तथा आदान-प्रदान के पत्रों का वर्णन रहता है। इस प्रकार का इतिहास कई दृष्टि से दोषपूर्ण रहता है। राजनयिक इतिहास का अध्ययन विश्वविद्यालय स्तर के छात्रों को आलोचनात्मक विधि से करना चाहिए।

1.9 सांस्कृतिक इतिहास

सांस्कृतिक इतिहास सामाजिक इतिहास का अभिन्न अंग है। इसके अन्तर्गत रीति-रिवाज, संस्कार, शिक्षा, साहित्य, वास्तुकला, चित्रकला, संगीत तथा अमोद-प्रमोद के साधनों का विवरण रहता है। सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन को सरल तथा सुबोध बनाने के लिए इतिहासकारों ने इतिहास क्षेत्र को प्राचीन, मध्ययुगीन तथा आधुनिक काल में विभक्त किया है। किसी महान सम्राट के शासन काल को सांस्कृतिक इतिहास का विषय बनाया जाता है। वैदिककाल, मौर्य कालीन, गुप्तकालीन, हर्षकालीन-, अकबरकालीन सांस्कृतिक विकास का अध्ययन इतिहासकारों ने किया है।

1.10 धार्मिक इतिहास

इतिहास का यह अत्यन्त रोचक विषय है। अधिकांश इतिहासकारों ने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर उस विषय पर अधिकाधिक चर्चा की है। बौद्धधर्म, जैनधर्म, इस्लामधर्म, ईसाधर्म का इतिहास विभिन्न युगों में लिखा गया है। यूरोप में पुनर्जागरण तथा धर्म सुधार काल, धार्मिक इतिहास लेखन की दृष्टि से स्वर्णकाल माना जाता है। धार्मिक विषयों की चर्चा प्रोटेस्टेंट तथा कैथोलिक इतिहासकारों ने किया है।

1.11 औपनिवेशिक इतिहास

औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात यूरोप के शक्तिशाली राष्ट्रों ने कच्चे माल की प्राप्ति के लिए एशिया, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका तथा उत्तरी अमेरिका में उपनिवेश स्थापित किए। प्रारम्भ में स्पेन, पुर्तगाल तथा बाद में इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा जर्मन के बीच उपनिवेश विस्तार के लिए प्रतिस्पर्धा होने लगी। इन राष्ट्रों के बीच पारस्परिक प्रतिन्द्विता के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति तनाव पूर्ण हो गई। फशोडा संकट, मोरक्को संकट तथा इतिहासकारों का ध्यान आकृष्ट किया। परिणामस्वरूप औपनिवेशिक इतिहास लेखन प्रारम्भ हुआ। इस इतिहास ने इतिहास क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

1.12 संसदीय इतिहास

लंदन विश्वविद्यालय के शोध प्रोफेसर डा. ए. जे. टायन्बी ने उन इतिहासकारों की कटु आलोचना की है जिन लोगों ने राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर राज्य प्रभुसत्ता के सिद्धान्तों का समर्थन किया है। फ्रांसीवाद तथा साम्यवाद के प्रतिरोध में अनेक इतिहासकारों ने संसदीय व्यवस्था की उपादेयता को सिद्ध करने के लिए संसदीय इतिहास लिखना प्रारम्भ किया

। उन लोगों ने अपनी रचना के माध्यम से राजा, अभिजात वर्ग राजा तथा संसद के बीच संघर्ष पर विशेष प्रकाश डाला है । यही नहीं बल्कि उन लोगों ने विश्वव्यापी मानवीय समाज के कल्याण के लिए संसदीय व्यवस्था की उपादेयता को सिद्ध किया है । '

1.13 सैनिक इतिहास

अनेक राज्यों के उत्थान तथा पतन के पीछे सैनिक कारण निर्णायक रहे हैं । नैपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी का उत्थान तथा पतन सैनिक गतिविधियों के कारण हुआ । इसके अन्तर्गत स्थल सेना, जल सेना और वायु सेना के लिए अस्त्र-शस्त्र का निर्माण और उसके प्रयोग का अध्ययन किया जाता है । आजकल अणुबम, न्यूक्लीन अस्त्र, प्रक्षेपास्त्र तथा रासायनिक अस्त्रों का निर्माण मानव जाति के विनाश के लिए किया जा रहा है । रेनियर के अनुसार - आधुनिक इतिहासकारों का पुनीत कर्तव्य है कि नैतिकता के माध्यम से उन नवीन अस्त्रों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाने, मानवता के विरुद्ध परमाणु अस्त्रों के प्रयोग की सर्वत्र निन्दा की जानी चाहिए । हिरोशिमा, नागासा की तथा वियतनाम में अमेरिका द्वारा परमाणु अस्त्रों का प्रयोग मानव समाज के लिए कलंक है । सन 1939 के प्रारम्भ में सर डेनिसन रॉस ने कहा था कि "वे दूसरे विश्व युद्ध के लिए अग्रसर हो रहे हैं । वे कोटि-कोटि नवयुवकों से बलिदान मांग रहे हैं और वे उनके आदेश को स्वीकार भी करेंगे । "सर डेनिसन रॉस की दृष्टि में भावी पीढ़ी के लिए इन नवयुवकों के बलिदान का कोई औचित्य नहीं है ।

1.14 कामनवेल्थ का इतिहास

इतिहास क्षेत्र में कामनवेल्थ का इतिहास ब्रिटिश साम्राज्य की देन है । डा० जे. ए. विलियम्सन ने ब्रिटिश साम्राज्य के विकास, समुद्री व्यापार तथा ट्यूडर कालीन नाविक आदि रचनाएं की हैं । कामनवेल्थ इतिहास का एकमात्र उद्देश्य ब्रिटिश उपनिवेशों की स्वतन्त्रता के बाद उन्हें राजनीतिक दृष्टि से एकता के सूत्र में बांधने के लिए कामनवेल्थ की स्थापना की गई है । आज भी इस माध्यम से ब्रिटेन तथा स्वतन्त्रता राष्ट्रों का सम्बन्ध बना हुआ है । सर कीथ हैंकाक ने सर्वे ऑफ ब्रिटिश कामनवेल्थ अफेयर्स नामक पुस्तक लिखी है ।

1.15 विचारों का इतिहास

इतिहास के क्षेत्र में विचारों का स्वतन्त्र अस्तित्व है । डेवी के अनुसार "Ideas belong to human beings who have bodies and there is no separation between the structure and process of the part of body that entertain ideas and the part that performs act."

कालिंग वुड ने समस्त इतिहास को विचार का इतिहास स्वीकार किया है । क्योंकि मानवीय कार्यों का यह उद्गम स्थल है और मनुष्य को कार्य करने के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित तथा बाध्य करता है । परिणामस्वरूप समस्त इतिहास विचार प्रधान होता है । ऐतिहासिक ज्ञान अतीत में मानवीय मस्तिष्क का ज्ञान है । यह मानवीय अनुभव का क्रमबद्ध ज्ञान है । इतिहासकार के मस्तिष्क में पुनरावृत्ति होती है । इसी को कालिंगवुड ने मानवीय मस्तिष्क की प्रक्रिया कहा है ।

1.16 इतिहास का दर्शन

इतिहास दर्शन का सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले वाल्तेयर थे। उनका एक मात्र उद्देश्य इतिहास अध्ययन को आलोचनात्मक तथा वैज्ञानिक बनाना था। इतिहासकार से अपेक्षा की जाती है कि ऐतिहासिक तथ्यों की पुनरावृत्ति की अपेक्षा अपने मस्तिष्क को विकसित करें, दर्शन का अर्थ ज्ञान के प्रति प्रेम है। इसका संकेत क्रमबद्ध ज्ञान से है, जिसका निरीक्षण या प्रत्यक्षीकरण वैज्ञानिक विधियों से भी सम्भव नहीं है। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में जब हीगेल ने इतिहास दर्शन का प्रयोग किया तो उसका तात्पर्य सार्वभौमिक मानवीय इतिहास से था। 19वीं सदी के अन्त में दार्शनिक इतिहासकारों ने घटना विशेष के ज्ञान के लिए सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया। इन दार्शनिक इतिहासकारों की दृष्टि में इतिहास के माध्यम से मानवीय समस्याओं का ज्ञान प्राप्त होता है; और यह उनके समाधान के लिए मार्ग दर्शन करता है। यदि विज्ञान बाल ज्ञान का अध्ययन है तो दर्शन अन्तर्ज्ञान का अध्ययन है।

इतिहास दर्शन के जन्मदाता वाल्तेयर का उद्देश्य इतिहास का आलोचनात्मक तथा वैज्ञानिक अध्ययन है। हीगेल का उद्देश्य सार्वभौमिक इतिहास से है। कोस्ले ने मानवीय ज्ञान संबंधी सामान्य नियमों के अन्वेषण के लिए लिया। कालिंग वुड ने अतीत की घटना तथा इतिहासकार के मस्तिष्क के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना को इतिहास दर्शन का प्रमुख उद्देश्य माना है। वटरफील्ड के अनुसार - इतिहास एक निरन्तर अग्रसरित होने वाली शक्ति है। व्यूरी, ब्लैक बेकर तथा वियर्ड की दृष्टि में ऐतिहासिक दर्शन युग के अनुकूल साम्य स्थापना का एक प्रयास है। मार्क्स ने आर्थिक नियतवाद के रूप में तथा टायन्वी युगीन समाजों के विश्लेषण में ऐतिहासिक दर्शन को प्रतिरोपित किया है। क्रोचे के अनुसार - इतिहास दर्शन एक बौद्धिक संस्था है।

इतिहास दर्शन के दो स्वरूप हैं - आलोचनात्मक इतिहास दर्शन तथा परिकल्पनात्मक इतिहास दर्शन तथा आलोचनात्मक इतिहास दर्शन विश्लेषणात्मक हैं, परिकल्पनात्मक इतिहास दर्शन औपचारिक तथा अर्थवादी है। पहले का उद्देश्य इतिहास विज्ञान का विश्लेषण तथा तार्किक खोज है। दूसरे का उद्देश्य इतिहास की घटनाओं में विशेष महत्वपूर्ण अर्थ का अन्वेषण होता है।

1.17 मानव स्वतन्त्रता तथा मानव प्रगति का इतिहास

आदि काल से आधुनिक काल तक यदि इतिहास का सर्वेक्षण किया जाय तो इसका स्वरूप मानवीय स्वतन्त्रता के निरन्तर प्रयास में परिलक्षित होता है। लार्ड ऐक्टन ने कहा है कि "इतिहास मानवीय स्वतन्त्रता की विकसित कहानी है।" इतिहास के महान आन्दोलन का उद्देश्य साम्राज्यों का निर्माण नहीं अपितु मानवीय इच्छा की स्वतन्त्रता का निरन्तर प्रयास रहा है। उद्देश्यपरक इतिहास में मनुष्य ने अपनी शक्ति का उपयोग स्वतन्त्रता प्रगति के लिए लिया है। स्वतन्त्रता के अभाव में मानवीय शक्ति को विकसित होने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ है। गिबन ने रोमन साम्राज्य के पतन का विश्लेषण करते हुए मानवीय स्वतन्त्रता के अभाव को पतन का प्रमुख कारण माना है। फ्रांस के इतिहास में 1789, 1830, 1848 की राज्य क्रान्तियों के नवीन अध्यायों की प्रमुख उद्घोषणा में स्वतन्त्रता का व्यापक प्रभाव देखा गया है। स्वतन्त्रता मानवीय इच्छा ने मानवीय मस्तिष्क की प्रक्रिया को सक्रिय बनाया है। जबकि

अनिवार्यता ने मानवीय शक्ति पर प्रतिबन्ध लगाया । बौद्धिकता का विकास स्वतन्त्रता का परिचायक है । क्रियाशक्ति चेतना ने ऐतिहासिक घटनाओं को सर्वाधिक प्रभावित किया है । अतः सम्पूर्ण इतिहास मानवीय स्वतन्त्रता की इच्छा से ओत-प्रोत है । इसीलिए दार्शनिक इतिहासकारों ने इतिहास को मानवीय स्वतन्त्रता का इतिहास कहा है ।

1.18 प्रगति का इतिहास :

तुर्गो तथा कौंदरसे ने मानव प्रगति के इतिहास से ही इतिहास का प्रारम्भ माना है । इस तत्व ने इतिहास को एकता तथा साम्यता प्रदान किया है । प्रगति की अवधारणा ने अतीत, वर्तमान तथा भविष्य निरन्तरता को स्थापित किया है । इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं होती है । यह सिद्धान्त प्रगति की अवधारणा को गति प्रदान करता है । अतीत कालीन दास प्रथा से आधुनिक सभ्यताओं का सर्वेक्षण इस तथ्य का स्पष्ट प्रगतिवादी रहा है । इतिहास मानवीय प्रगति को मापने का एक यन्त्र है । मनुष्य की क्रियात्मक गतिविधियों ने किस प्रकार प्रकृति, पशु, पक्षी, पृथ्वी की शक्तियों पर विजय प्राप्त कर अन्तरिक्ष यात्रा के माध्यम से चन्द्रमा के धरातल पर अवतरण में सहायक सिद्ध हुआ है । मानवीय प्रगति ने व्यूरी जैसे इतिहासकार को यह कहने को बाध्य कर दिया कि इतिहास विज्ञान है न कम न अधिक । अन्त में हम यह कह सकते हैं कि समस्त मानवीय इतिहास प्रगति का इतिहास है ।

कालिंगवुड के अनुसार प्रगति का संबंध प्रकृति तथा इतिहास से है । प्रकृति में प्रगति नहीं अपितु विकास होता है । परन्तु मानवीय इतिहास का स्वरूप प्रगतिशील रहा है । इतिहास में समस्त मानवीय उपलब्धियों के पीछे एक प्रगति का इतिहास होता है । चन्द्रमा पर मनुष्य ने कई बार प्रयास किया है । इतिहासवाद के सिद्धान्त के आधार पर अन्तिम उपलब्धि के परिवेश में सभी प्रयासों का क्रमबद्ध अध्ययन करना है । आज जब हम जीवन सच्चाई नवीन तथ्यों को स्वीकार करते हैं तो उसकी उपादेयता को इतिहास के पृष्ठों में ढूँढते हैं ।

1.19 विश्व इतिहास

प्रथम विश्वयुद्ध उग्र राष्ट्रीयता की भावनाओं का परिणाम था । मानव समाज की रक्षा के लिए विश्व संस्थाओं की आवश्यकता की अनुभूति की गई । हेग न्यायालय, राष्ट्रसंघ तथा राष्ट्रसंघ की स्थापना के उद्देश्य से की गई विश्व भ्रातृत्ववाद की भावना को जाग्रत करने में इतिहासकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । सबसे पहले सर वाल्टर रेले ने विश्व इतिहास लिखा । इस दिशा में एच. जी. वेल्स तथा टायन्वी का योगदान अधिक महत्वपूर्ण है । परिणामस्वरूप आज राष्ट्र विशेष की समस्या विश्व समस्या के रूप में देखा जाता है ।

1.20 निष्कर्ष

इन विभाजनों का कोई अन्तिम स्वरूप नहीं है । इतिहास का कालिक विभाजन यद्यपि महत्वपूर्ण है, परन्तु इतिहासकारों को विशिष्ट दक्षता के परिवेश में अपने को बन्दी नहीं बनाना चाहिए । प्रो० बुशमेकर ने लिखा है a foolish exaggerated specialization brought about the terror of appearing scientific and delectante".

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के भाषण में एक जर्मन इतिहासकार ने कहा है कि मैं जर्मनी के इतिहास 1925-30 ई० का विशेषज्ञ हूँ तो श्रोताओं ने इसका उपहास किया, क्योंकि

उनकी दृष्टि में विशेषज्ञता के साथ-साथ इतिहास के सामान्य ज्ञान की भी आवश्यकता होती है । रेनियर ने स्पष्ट लिखा है कि किसी क्षेत्र की ऐतिहासिक दक्षता इतिहास का शत्रु है ।

यदि पेशेवर इतिहासकार सामान्य तथा सर्वकालिक इतिहास नहीं लिखेंगे, तो इतिहास लेखन इतिहासकारों के हाथों से निकल जाएगा । परिणामस्वरूप इतिहास की विशिष्ट दक्षता के साथ-साथ सामान्य इतिहास का अध्ययन तथा लेखन करना चाहिए । वर्तमान समाज इतिहासकारों से यही अपेक्षा करता है ।

1.21 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. इतिहास के स्वरूप का विवेचन कीजिये ?
2. इतिहास की विषय वस्तु क्या है ?
3. इतिहास की विभिन्न शाखाओं का संक्षिप्त विवरण दीजिये ?

1.22 संदर्भ ग्रंथ

1. E.H. Carr : What is History ? (Also in Hindi)
2. R.G. Collingwood : Idea of History.
3. D. Goel : Philosophy of History.
4. गोल्डन चाइल्ड : इतिहास का इतिहास
5. गोविन्द चन्द पाण्डे : इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत

इकाई - 2

इतिहास प्रगति के समरूप

इकाई की रूपरेखा

- 2.0 उद्देश्य
- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 प्रगति की परिभाषा
- 2.3 मानव इतिहास की संरचना
 - 2.3.1 इतिहास और मानव संकल्प
 - 2.3.2 मानवीय समाज के विभिन्न आयाम
- 2.4 ऐतिहासिक प्रगति के निर्णायक तत्व
 - 2.4.1 मार्क्स की प्रगति की नियतिवादी व्याख्या
 - 2.4.2 इतिहास निर्माता का आत्म-बोध और मानसिकता
- 2.5 संक्रान्ति के वस्तुनिष्ठ एवं वैयक्तिक कारक
 - 2.5.1 ऐतिहासिक अवमूर्तनों के वस्तुनिष्ठ आदर्श और इतिहास के नायकों की अभिलाषा
- 2.6 क्या सम्पूर्ण मानव जाति के विकास का कोई एक सुस्पष्ट प्रारूप है ?
 - 26.1 समकालीन सार्वभौम इतिहास में अराजक विशिष्टों की समस्या
- 2.7 जातीय नानात्व एवं विशिष्ट परम्पराएं ।
- 2.8 क्या सम्पूर्ण मानवीय इतिहास किसी केन्द्रीय लक्ष्य को प्राप्त कर रहा है ?
 - 2.8.1 नाना जातीय सांस्कृतिक परम्पराएं अन्योन्य विशिष्ट मूल्य परिप्रेक्ष्य व्यक्त करती हैं ।
- 2.9 इकाई का सारांश
- 2.10 अभ्यास के प्रश्न
- 2.11 संदर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

हमारी इस इकाई का उद्देश्य इतिहास प्रक्रिया का विश्लेषण और उसके उत्तरोत्तर चरणों में प्रगति के प्रारूप का रेखांकन करना है । समकालीन इतिहास विचारणा की पृष्ठभूमि में यहां हम उन सभी धुरी प्रश्नों की चर्चा संक्षिप्त आकार में प्रस्तुत करने में दत्तचित्त होंगे, जो मुखर होकर पिछले कुछ विचारकों ने इतिहास की सर्वांगीण विवेचना के लिए उपलब्ध कराए हैं । इस इकाई में हमें मार्क्स, हीगेल, बूरी, फेंच विचारकों (कोम्ट, काण्डिलोक, काण्डारसे, वाल्तेयर, सेन सिमोन, आदि) ने पूर्ण जागतिक इतिहास पर जैसी जैसी परम्पर अनमिल पर सदैव ओजस्वी अवधारणाएं पीछे कुछ पीढ़ियों में दी हैं, उनका निरूपण, व्याख्या, समीक्षा और तदुपरांत उनकी प्रामाणिक उपलब्धियों का हम मूल्यांकन भी देंगे । इसी इकाई में हम इस सतत् एक-रेखीय प्रगति को अस्वीकारने वाले इतिहास विचारकों, जिनमें आज्वल्ड स्पैगलर अग्रणी हैं की सुतीक्षण-

युक्तियों और दावों का परिपथ और उनकी परख भी करेंगे। मूलभूत प्रश्न इस संदर्भ में मात्र यह होगा कि क्या विभिन्न देशों काल-खण्डों में बंटे हुए मानव मात्र का समष्टिगत जीवन किसी सीमा तक एक सार्थक लक्ष्य की ओर अग्रसर होता देखा जा सकता है? अथवा विभिन्न क्षेत्रों, युगों, समाजों और जातियों के केवल पृथक-पृथक इतिहास है, जिनमें किसी तारतम्य की खोज सार्थक ऐतिहासिक प्रश्न नहीं है। हम इस इकाई में इस प्रश्न पर पुनर्विचार के लिए कुछ युक्तियां प्रस्तुत करेंगे, और इसी से संलग्न एक दूसरे प्रश्न कि क्या हम मानवीय इतिहास, संस्कृति एवं व्यक्तिगत संकल्पों की असंदिग्ध, सार्वभौम और काल-निरपेक्ष व्याख्या करने के लिए कोई सुनिश्चित अपरिवर्तनीय प्रारूप गढ़ सकते हैं? पर भी कुछ मुद्दे उठाकर कुछ स्पष्ट निष्कर्ष निकालने में यत्नशील होंगे। इस प्रकार इतिहास की अपरिवर्तनीय प्रगति की ओर अजस्र धारा की गतिशीलता की अवधारणा का कुछ विश्लेषण यहां उपस्थित करेंगे।

2.1 प्रस्तावना

केवल मानव ही मूल्य-सृष्टा है और उसकी आप बीती इतिहास'। सामूहिक सामाजिक संस्कृति और उसकी उत्पत्ति केवल जैविक-संतुलन अथवा प्राकृतिक नियमों के अनुसरण में अपना मर्म अभिव्यक्त नहीं करती। इसका यह अर्थ भी नहीं है कि कोई मानव या संस्कृति किसी भी प्रकार प्रकृति के भौगोलिक, प्राकृतिक, जैविक कायिक निर्धारकों की अनदेखी करके इतिहास के रचयिता बनने की स्थिति तक पहुंचकर ही इतिहास में अपनी विशिष्ट भूमिका निभा सकने में समर्थ हो सकती है। इसके विपरीत यह स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है कि किसी भी मानव कर्म द्वारा सार्थक अर्थवत्ता उपलब्ध करने के लिए उस यौक्तिक कर्त्ता में वास्तविक जगत की नियमशीलताओं का पूरा सचेत एवं त्रुटिहीन संज्ञान हो, अदम्य आकांक्षा, स्फूर्ति एवं दुर्धर्ष इच्छा-शक्ति द्वारा किसी भी रागविह्वल इतिहास निर्माता को अन्ततोगत्वा केवल अपार निराशा और आत्म निवर्सन करने वाला मोहभंग ही मिलेगा। हमारी अभिलाषाओं और लालसाओं को समाज के व्यापक तन्त्र में व्याप्त व्यक्ति-निरपेक्ष साक्ष्यों के विवेचन से उपलब्ध दृष्टिकोण और वस्तुनिष्ठ सम्भावनाओं की लगाम से अनुचालित करके ही कोई सफल समाज का संचालन करके उसका निर्देशक बन सकता है। इसी बात में यह भी स्पष्ट रूप से पहचाना जाना चाहिए कि इतिहास की नियतिवादी व्याख्या मानव की युक्तिशील, मानसिकता और उसकी आत्म अनुशासन की मेधावी शक्तियों को पहचानने में असफल होकर मानवीय इतिहास को केवल मानवेतर निर्धारकों का खेल समझने में भूल करती है। मानव सचेत रूप से प्रत्येक ऐतिहासिक संदर्भ में अपनी सचेतन रूप से क्षमताओं और 'अवधारणात्मक आत्म स्वतंत्र' के वैकल्पिक प्रयोगों द्वारा सतत एक मुक्त संकल्प द्वारा प्रामाणिक एवं सार्थक ऐतिहासिक-मूल्य गढ़ने में चिर-स्वण्य है, जिसका यह अर्थ कदापि नहीं समझा जाना चाहिए कि इतिहास में बहुत सारी अत्यंत कुत्सित, क्लेशदायी नकारात्मक, विमूढताएं नहीं होती। इस प्रकार की अटूट त्रासदियों को झेलते रहकर मानव कृतिकार अपने युग, समाज के बीते अतीत को स्मृति अवशेषों और अनखिले भविष्य के प्रतिमूर्त्तन में अपने चितन्य आदर्शों को सामने रखकर युक्तिसंगत' निर्णय लेता है, और आशा करता है कि उसकी परख, पकड़ और कर्मठता उसे मात्र दृष्टिहीन दुस्साहसी ही नहीं बनने देगी। वस्तुतः किसी अवसर पर वह बखूबी जानते हुए जोखिम उठाता है और

विस्मयकारी नवोन्मेष कर जाता है, जबकि किन्हीं अन्य दृष्टांतों में मानव जिविषा अपनी बनी बनाई आश्वस्त लीकों पर चलते चलते अप्रत्याशित रूप से मुंह के बल उलट जाती है। इतिहास की इस विस्मयकारी अनिश्चितता की व्याख्या करना इतिहास पर किसी भी प्रकार की विवेचना करने वाला का प्रथम दायित्व है। इस इकाई में कुछ केन्द्रीय विचारणीय मुद्दे हम इस इतिहास के सतत परिवर्तित परिवर्द्धित सम्भाव्यों और सोपानों के बारे में संक्षिप्त आकार में प्रस्तुत करेंगे।

2.2 प्रगति की परिभाषा

आधुनिक जगत के विचारवेत्ताओं ने समूची जागतिक मानव आपबीती को आशावादी दृष्टि से स्वीकार किया है। इसके विरोध में प्रायः परम्परावादी मध्ययुगीन धार्मिक और अनुदारवादी विचारक स्वर्णयुग को अतीत के कुहासे में मानने पर जोर देते थे। स्वयं भारतीय विश्वदृष्टि इसी के समान विचार युगों के सत, त्रेता, द्वापर और कल युगों द्वारा क्रमशः हासोन्मुख इतिहास की चर्चा करते हैं। इसी दृष्टि के समानान्तर इतिहास में किसी भी एक विशिष्ट लक्ष्य की ओर सतत् अग्रसर होते रहने की प्रमुख प्रवृत्ति को रेखांकित करने की भी हिमायत की गई है। इस विचार प्रणाली को प्रगतिवादी विचारधारा कहा जाता है। यह लक्ष्य अलग-अलग दृष्टि रखने वाले विश्लेषकों द्वारा स्पष्टतया भिन्न-भिन्न रूपायित किए गए हैं। यह सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक और धार्मिक अथवा नैतिक आयामों पर स्थित माने गए हैं। इस प्रकार समूची मानव जाति की सारी कठिन दुरुहता, कटुता, भटकावों, और विरूपताओं का पूरा लेखा, जोखा लेते हुए भी मेधावी व्याख्याता यह निर्विवाद निरूपण करते हैं कि मानव मात्र काल के अविरल संक्रमण में उत्तरोत्तर अधिक सभ्य, मानववादी, सत्यनिष्ठ, पटु और न्यायसंगत, सामाजिक तन्त्र परिपक्व संस्कृति मार्मिक सांस्कृतिक चेतना और अटूट सुख और मानवीय मूल्यों को इतिहास में चरितार्थ कराता पाया जाता है। दास वृत्ति, क्रूरता, हिंसा, युद्ध, बर्बरता, शोषण, अन्याय समय के परिवर्तन के साथ क्रान्तियों और मानव के नवबोध के युग की नवीन मनोरचना के सहचर्य से कम होते जा रहे हैं। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, भेषज और कृषि की नव उपगन्ध क्षमताओं से मानव जीवन का मध्यकालीन कुत्सित एवं अन्यायपूर्ण जीवन परिधि को पीछे छोड़ता मानव अपने नवीन बोध से अपने सम-सामयिक राज्य, अर्थ-संरचना, संस्कृति एवं सहयोग का युक्तिशील रचियता बनने के मार्ग पर बढ़ता चला आया है। मौटे तौर पर युक्ति, न्याय, स्वातन्त्र्य, सौहार्द्र, समानता, शान्ति, सहयोग यदि मानव समाज में सतत प्रामाणिक स्तर पर उपलब्ध हो जाएं तो इस दृष्टि से इसे सामाजिक ऐतिहासिक 'प्रगति' माना जाना चाहिए। जरूरी नहीं है कि ऐसे सामाजिक तन्त्र में भी होड, गैर-बराबरी, रोग, अपराध एवं व्यक्तिगत क्लेश, आत्म-निर्वसनता और कुछ सीमा तक परतन्त्रता बनी रहे, किन्तु आशावादी मानववादी दृष्टि इस विषम स्थिति से भी भविष्य में समूची मानव जाति को इन त्रासदायक परिस्थितियों से उबरता हुआ देखती है।

'प्रगति' की अवधारणा की उपर्युक्त सामान्य लाक्षणिक चर्चा काफी नहीं है। इस प्रगति के लक्ष्य को इतना प्रसार मूलक बना देने पर इस अवधारणा की इतिहास की चर्चा में उपयोगिता क्षीण हो जायेगी। चूंकि यह लक्ष्य यदि काफी विभिन्न स्तर के हैं, तो सम्भवतया

हम किसी न किसी विशेष स्तर तक कुछ न कुछ विशेष लोगों में कोई समूर्तन कुछ लाक्षणिक प्रगति के सूचकांक के रूप में प्रतिपादित कर ही सकेंगे । फलस्वरूप किसी भी मानवीय समाज को इस आधार पर प्रगति मार्ग का अवरोधक समाज नहीं सिद्ध कर सकेंगे । युक्ति के द्वारा यह निष्कर्ष प्रगतिवादी चिन्तन का विरोधी होगा । यह जरूरी है कि प्रगति की चर्चा और अधिक स्पष्ट मानदण्डों के वस्तुनिष्ठ प्रयोग द्वारा की जाए ।

प्रायः क्षति के मूर्त लक्षण समाज और सांस्कृतिक जीवन के इतिहास में रुचि रखने वाले समीक्षक कुछ मूल-मत मानवीय जीवन की प्राथमिक वरीयताओं के एक समुच्चय में अधिक विश्वसनीय चरितार्थ न पाने के साक्ष्यों द्वारा अवलोकित करना चाहते हैं । इस चर्चा में वह सार्वभौम युक्ति द्वारा अकाट्य एवं प्रामाणिक मानवीय वरीयताओं की कसौटी को सभी समाजों, जातियों और युगों के लिए अविभाज्य मानने की दावेदारी करते हैं । कठिनाई इस आरोप की स्वयं इन चरियताओं के भी वस्तुतः युग निरपेक्ष अथवा समाज और संस्कृति निरपेक्ष होने के विश्वास को लेकर है । चूंकि सम-सामयिक 'आस्थाए' और सांस्कृतिक दृष्टि' इतिहास के पूर्व उद्घाटित परिप्रेक्ष्यों को उनके स्वतंत्र प्रारूपों में अनावृत्त करने के बजाय उनको संस्कृति के नवबोध से गढ़े गए मानदण्डों पर मूल्यांकन करके उन्हें 'असफल' अथवा 'हेय' ठहरा देती है । हमारी सम-सामयिक युक्ति इसी संदर्भ में हमें सावधान करेगी कि क्या यह मूल्य अवधारणाएं विभिन्न समाजों और किसी एक ही समाज के अन्योन्य युगों और तत्कालीन मानव जीवन के स्वरूप को एक जकड़े हुए जड़ सांचे में ढालने की त्रुटि नहीं कर रहे हैं ? यदि यह हमारे सम-सामयिक बोध की अनिवार्य पूर्वापेक्षाएं हैं, तो कैसे पूर्वगामी, अन्य समाज के विचारकों और इस वर्तमान के अवसान के बाद आने वाले भविष्य के गर्भ से अभी अनुपजी 'मूल्य दृष्टियों' को भी यही मूल्यांकन हमारी 'यहां-अभी' की सम-सामयिक दृष्टि' पर आरोपित करने के युक्तिशील अधिकार को हम कैसे नकार सकते हैं ? निष्कर्षतयः, आत्म-तोष और अहंपोषण के कुरूप तथ्य से मुक्त क्या समसामयिक दृष्टि पर सधा हुआ अन्वेषक समूचे पृथक-पृथक समाजों के सतत् परिवर्तनशील मूल्य परामर्शों और उनके आधारों पर बनाए गए विभिन्न सामाजिक तन्त्रों, संस्थाओं, जीवन वृत्तों और उनकी उपलब्धियों को मात्र समकालीन मूल्य मानकों के आधार पर किस प्रकार खोटा, अपरिपक्व अथवा पाशिवक ठहरा सकते हैं ? क्या मानव के सभी पूर्ण आदर्श सहज केवल सुदूर भविष्य में ही विचारणीय हैं, जबकि हम देख चुके हैं, हमारे समकालीन इतिहास पर विचार करने वाले अनेकों समकालीन व्याख्याता इस एक रेखीय उत्तरोत्तर प्रगति के प्रारूप के भ्रामक और इतिहास के अन्योन्य वृत्तों, अनुकम्पनों अथवा चक्र को और लयों को भी गम्भीरता से चर्चा की मांग करते रहे हैं । हीगेल, क्रोचे, मार्क्स, काम्ते जो समकालीन यूरोपीय युक्ति के पक्षधर होकर समस्त जागतिक इतिहास को एक पूर्वनिर्दिष्ट प्रगति की ओर अग्रसर होने की दावेदारी करते रहे हैं, उन्हें नीतो, स्पैंगलर, टायनबी, वीको, सारोकिन की व्याख्याओं में कई अन्य पराकाष्ठाओं, नैतिक और सांस्कृतिक विपरितताओं अन्योन्य लक्ष्यों की अवधारणाओं को चुनौती स्वीकार करनी पड़ रही है । आज नृतत्व और समाज वैज्ञानिकों ने इस एक आदर्श समान लक्ष्य भविष्य को विभिन्न मूल्य-दृष्टियों की स्वायत्ताओं द्वारा भी निष्कासित किया है ।

इस सारी बहस में हमें बार-बार संस्कृति की विशिष्ट युगीन परम्पराओं और उनके द्वारा विकसित वैकल्पिक सांस्कृतिक धरोहरों के तुलनात्मक विश्लेषणों पर ध्यान देना होगा। इस प्रकार का सामाजिक रचनाओं का मूल्यांकन किस सीमा तक विशिष्ट युग, दृष्टि, संस्कृति और जातीयता के निष्कर्षों की सापेक्षताओं से ऊपर उठता है, हमारी 'प्रगति' की अवधारणा में समाहित है, इस संदर्भ में नीचे हम प्रगति के लिए अपरिहार्य पूर्वापेक्षाओं का निरूपण करेंगे। क्या विभिन्न मूल्य-परिप्रेक्ष्यों में हमें कोई आधारभूत साम्य, मौलिक सार्वभौम निकष अथवा अवमूल्यन और तुलना के सर्वमान्य सूत्र इतिहास द्वारा मिलेंगे? इस प्रश्न का उत्तर देना किसी भी प्रगति सिद्धांत के विकास के लिए महत्वपूर्ण है।

जैसा हम मानते हैं कि मानव इतिहास मानव प्रकृति की मूलभूत क्षमताओं का ही प्रस्फूटन है। सामाजिकता, रचनाशीलता, यौक्तिक संज्ञान, न्याय, समता, प्रभावोत्पादक नवोन्मेष एवं उसकी सतत सम्प्रेषण और इन रेखांको के सामंजस्यपूर्ण संघात हमारी बौद्धिक समीक्षा के लिए सामाजिक प्रगति के प्रतिपादन में आधारभूत निर्णायक कसौटी प्रायः माने जाते हैं। किन्तु इसमें भी एक अति कठिन और न सुलझने वाली गुत्थी का सामना हर सचेत विचारक को करना पड़ सकता है। क्या इन विभिन्न आयामी निकषों को हम सहज यौगिक संरचना के द्वारा परस्पर एक जुट सूचकांक में परिवर्द्धित कर सकते हैं? इतिहास और मानवीय अनुभूतियां इस सपाट आकलन को प्रायः असिद्ध करती लगती हैं। यह बात इससे स्पष्ट है कि उपभोग की सतत बुद्धि हमारी पारस्परिक सहयोग और सामाजिकता के साथ समानान्तर विकसित नहीं होती। अपेक्षाकृत सरल समाजों में जैविक उपभोग के साधन नागर बोधी औद्योगिक समाज से कहीं न्यून स्तर के थे, और इन न्यून स्तरीय सुविधाओं का विभिन्न वर्गों के उपभोक्ताओं में परस्पर वितरण भी आपत्तिजनक स्तर तक गैर बराबर था। उसके सरल समाजों में आदान-प्रदान, सम्प्रेषण और एकात्मता समृद्ध उपभोक्ता औद्योगिक समाज से कहीं अधिक प्रबल थी। सरल समाजों में प्रकृति के प्रति सम्मान एवं आस्था का भाव भी औद्योगिक शोषण के शनैः-शनैः विस्तार के साथ दोहन और अधि शासन अधिकार में बदला जाता पाते हैं। क्या ऐसा सामाजिक संक्रमण पूर्ण रूप से निर्विवाद एक पिछड़ी बर्बर स्तर की सामाजिक रचना का प्रगतिशील आधुनिक समाज रचना की ओर परिवर्तन ठहराया जाना चाहिए?

इस संदर्भ में सभी समाज समीक्षक एक ही दृष्टि सम्भवतया बना पाने में समर्थ न होंगे। इस दृष्टि से अति समसामयिक चिंतन में इतिहास के विभिन्न युगों सुनिश्चित, आदिम, मध्यकालीन आधुनिक युगों सुनिश्चित निर्विवाद संरचनाओं पर भी कई नए प्रश्न चिन्ह लगाए हैं। इन प्रश्नों की सही पडताल करने के पहले निम्न खण्ड में कुछ संक्षिप्त परिचय मानव इतिहास और उसकी संरचनाओं से होना उपयोगी पाया जायेगा।

2.3 मानव इतिहास की संरचना

प्राणी जगत के विभिन्न स्वरूप केवल ब्रह्मांड भर में केवल इस अत्यंत लघु ग्रह पर करोड़ों वर्षों से विकसित होते रहे हैं। प्राणी मात्र के विविध जैविक व्यापारों का लेखा ब्यौरा जीव विज्ञान के वर्गीकरण एवं सर्वेक्षण का अंग भले हों, किन्तु सम-सामयिक मुहावरे में उसे मानवीय इतिहास की अवधारणा के क्षेत्र से बाहर का विषय प्रायः सभी लोगों द्वारा सहज मान लिया

जायेगा । इसी प्रकार समूची निहारिकाओं, तारा समूहों, उल्काओं और मित्र तारों से संलग्न सौर मण्डलों गूहों और उनके माण्डलिकों के संघात, जन्म संहार और पृथक-पृथक कालखण्डों में होने वाले संश्लिष्ट घटना क्रम को ब्रह्मांड की सृष्टि, उत्पत्ति, उत्तरोन्तर विकास अथवा विसर्जन के अविभाज्य तथ्य होते हुए भी मानव इतिहास की स्पष्ट काया का अंग नहीं माना जा सकता । स्वयं पृथ्वी की संरचना का एक विपुल काल खण्ड प्राणी हीन (पशु, वनस्पति) मात्र रासायनिक और भूगर्भीय अथवा भूवैज्ञानिक संरचनाओं के लम्बे परिवर्तनों से महायुगों तक स्थापित हुआ है । यह सारी प्रक्रियाएं मानव के ऐतिहासिक संरचनाओं की ब्रह्मांड की पृष्ठभूमि मात्र तो जरूर हैं, पर इनके द्वारा मूर्त ऐतिहासिक विवेचन में कोई योगदान सम्भवतया विचारनीय नहीं है । इसी प्रकार जीव विज्ञान और वांशकीय विज्ञान द्वारा नाना युगों में परिवर्द्धित और तन्त्रमूलक विकासों द्वारा अन्योन्य प्राणी जातियों के विकास की व्याख्याएं जीव विज्ञान की परम महत्वपूर्ण जानकारी होकर भी मानव इतिहास की संरचनाओं को विश्लेषित करने में कोई सार्थक भूमिका नहीं निभा पायेंगी ।

मानव इतिहास की अवधारणाएं केवल कायिक परिवर्तनों और जैविक विभाजनों से ऊपर मानव के समाजीकरण और भाषा द्वारा संगठित विशेष संस्थाओं और उनके द्वारा उपलब्ध कृतियों, विचारधाराओं, आदर्शों, तन्त्रमूलक मूर्तों और अमूर्त रचनाओं के परस्पर अन्तर मंथन, संशोधन, विकास, विघटन और पुनर्नियोजन तक ही सीमित हैं । अत्यंत स्पष्ट रूप से इतिहास कलेवर को आदिम जातियों के प्रकृति साध्य जीवन यापन, अनवरत सामाजिक प्रारूपों और अपरिवर्तनीय संस्कृति और उपलब्धियों अथवा संरचनाओं से भी दूर रखना जरूरी समझा जाता है । इतिहास में केवल वे मानवीय कृतियां स्थान बना पाती हैं, जिन्हें मानव अपने संकल्प, मानसिक चैतन्य और साध्य-साधन योजना के क्रियान्वयन द्वारा सार्वजनिक आयाम में मूर्त करता है । कई बार इस सीमांकन में यह भी सिफारिश की जाती है कि इतिहास जिन मानवीय संरचनाओं को अपनी विषयवस्तु स्वीकार करता है, उनके संबंध में लिखित मूर्त दस्तावेज भी साक्ष्य रूप से विद्यमान मिलने चाहिए । यदि इस किस्म के उपलब्ध नहीं है तो हमारी उन पौराणिक वार्ताओं और किंवदंतियों से घपला कर जायेगी, जिनको हम सरल आदिम संस्कृतियों के अध्ययन में प्रायः प्रयोग करते हैं । लम्बे मानवीय कथानक का अत्यंत संक्षिप्त परावर्ती अंश ही ऐतिहासिक संरचनाओं का काल ठहरता है । मानवीय संस्कृतियां तो लगभग लाखों वर्ष से पृथ्वी पर विद्यमान रहीं होंगी । परन्तु पूर्व कथित व्याख्याओं के आधार पर निष्कर्षतया ऐतिहासिक संरचनाएं अधिक से अधिक केवल ईसा पूर्व 5000 वर्ष पूर्व तक ही विद्यमान मानी जा सकती हैं ।

इस संक्षिप्त ऐतिहासिक काल खण्ड को भी हम पूर्ण रूप से समानधर्मी ऐतिहासिक संरचनाओं का एक जुट अविभाज्य क्षेत्र मानने का दावा नहीं कर सकते । इन पिछले 7000 वर्षों में भी विभिन्न युगों में विभिन्न ऐतिहासिक संरचनाओं की काया, आन्तरिक संयोजनाओं और उनकी परस्पर अन्तर्क्रियाओं और रचना विधानों में खासे विभाजन दिखाई पड़ते हैं । प्रायः राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक, सैनिक क्रियाओं और परिवर्तनों को इतिहास विश्लेषण में राजपुरुषों, सम्भ्रांत अधिकार प्राप्त श्रेष्ठ व्यक्तियों के स्थान पर सामान्य कर्मियों सर्वहारा

उत्पीड़ित और शोधित वर्गों की भूमिका, उनके द्वारा रचित जन सामान्य विचारवीथियों, कला प्रयासों और विचार खण्डों को ऐतिहासिक संरचनाओं के गठन में अधिक महत्वपूर्ण ठहराया जाने लगा है । इस दृष्टिकोण में यह आस्था निहित है कि ऐतिहासिक औपचारिक दस्तावेजों में पिरोये मन्तव्य सामाजिक संरचना के निर्धारण में वह बहुश्रुत भूमिका नहीं निभाते जो अपेक्षाकृत नजर अंदाज इतिहास के उपेक्षित सामान्यकर्ता चरितार्थ करते हैं । यह अट्टालिकाएं, भग्नावशेष, कलाकृतियां, आलेख, प्रशस्ति पत्र, शिला लेख, स्वर्ण मुद्राओं पर उत्कीर्ण अभिजात्य गर्वोक्तियां वास्तविक ऐतिहासिक प्रक्रिया को गुमराह करने में अधिक सफल हैं, इसके विपरीत खेतिहर मजदूरों के श्रम और उनके द्वारा कालजयी मानवीय हुनर सतत बदलते पर्यावरण को किस प्रकार मानव जीवन की अपरिवर्तनीय मांगों को किस सीमा तक पूरा करते हैं । अनायास ही हमें अतीत की वस्तुनिष्ठ रागात्मक मुखौटा को उतार कर देखी ठोस और यथार्थ पूर्ण छवि दिखलायेंगे । जनश्रुतियां मौखिक जन-परम्पराएं भी वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक संरचनाओं को रेखांकित करती हैं ।

जब भी ऐतिहासिक संरचना की स्वरूपात्मक प्राथमिकता की चर्चा की जाती है कि सार्थक मौलिक इतिहास की व्याख्या के लिए किस इकाई को ठहराया जाए ? सम्पूर्ण मानवता? सार्वभौम सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, भौगोलिक राजनैतिक इकाई, आर्थिक संरचनाएं सामंतवाद, उपनिवेशवाद, पूंजीवाद, सम्भ्रांतवाद, समाजवाद आदि ।

इसके विरोधी विचारधारा के अनुयायी सभी 'व्यक्ति' से भिन्न ऐतिहासिक संरचनाओं को अमूर्त अन्वेषकों के अमूर्त मन्तव्य तक ठहराने से नहीं कतराते । ऐसे अराजक ऐतिहासिक विशिष्टों के व्याख्याता, ऐतिहासिक इकाई को केवल मात्र मानव व्यक्तित्व और उसके विविध मन्तव्यों को ही प्रथम मध्य और अन्त तक एक मात्र इतिहास के कारक और मानव इतिहास की प्रक्रिया का एक मात्र स्रोत ठहराते हैं । वास्तव में न तो राजनीतिक दृष्टियां, न आर्थिक नीतियां अथवा नैतिक या धार्मिक विचार प्रणालियां इतिहास, वर्ग-संघर्ष या उत्पादन के साधनों का संघात अथवा उन पर एकाधिकार पैदा करती है । इन सभी संरचनाओं और अनुष्ठानों के मूल में सहज मानवकर्त्ता उसके संकल्प आवेश राग-द्वेष, उदात्त एवं कुत्सित प्रवृत्तियां ही प्रायः क्रियाशील होती है । यह छद्मकर्त्ता दोहरे आयामों में ऐतिहासिक यथार्थ में उद्घाटित होते हैं, एक बार स्वयं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इतिहास के सर्जक अपनी मानसिकता को मूर्त सामाजिक शक्तियों का पर्याय समझाने में अपने संकल्पों को सहज परिपूर्णता देने के लिए उपयोग करते हैं, वहीं दूसरी ओर मानव इतिहास के विश्लेषक अपने असंख्य परस्पर अनमिल कभी-कभी भयावह स्तर तक परस्पर असाध्य लक्ष्यों को सरलीकृत प्रारूप में नियोजित करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के बौद्धिक अवधारणामूलक निर्धारकों की परिकल्पना अपनी व्याख्या के सफल होने के लिए आवश्यक पाते हैं ।

इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण को हम 'प्रगति' अवधारणा की समीक्षा में स्मरण रखने की सिफारिश करेंगे । किन्तु इस इकाई को सुचारू रूप से निखारने में निम्न भाग में इतिहास संरचना में मानव संकल्प की भूमिका रेखांकित करना जरूरी समझते हैं ।

2.3.1 इतिहास और मानव संकल्प

घटनाओं के घटाटोप और विभिन्न व्याख्याओं के जमघट प्रायः विभिन्न स्तरीय निर्धारकों के सौष्ठव द्वारा अभिव्यंजित किए जाते हैं । किन्तु इतिहास की स्वरूप रचना प्रारम्भ, मध्य और अन्त तक विशेष इतिहासकर्मों के संकल्प द्वारा ही उत्पादित होती है । इतिहासकर्मों को अपनी परिस्थितियों का विवेक और उसके अपने सभी सम्भव तथ्यों की जानकारी इस विशेष व्यक्ति के निजी मूल्यों की कसौटी पर जांचे जाने के बाद भविष्य में कृति सम्पादित करने की योजना का रूप ही सुविचारित संकल्प होता है, फिर यह संकल्प चाहे किसी गुमनाम श्रमिक का हो या किसी विशेष अनुष्ठान, संगठन, संस्था या व्यवस्था के पदाधिकारी का हो, इस प्रकार के प्रतिनिधित्व की भूमिका ही संस्थाओं को मूर्त ऐतिहासिक कारक बनाने में सफल होती है । वस्तुतः केवल चीख और इस प्रकार की व्याख्या के प्रतिनिधि के बीच किसी न किसी स्तर पर कुछ दूरी बनी रहती है, परन्तु कोई भी वर्ग, परिषद, समिति, कार्यकारिणी अपने समूचे छदम एकात्मकता और स्वतंत्र एवं चिर मुक्त संकल्प करने के दावों के होते हुए मूलतया सभी प्रकार के सुनियोजित संकल्पों में एक प्रभावशाली संकल्पशील कर्मठ कर्त्ता होता है, दूसरे उससे या तो प्रभावित होकर उसका अनुसरण करते हैं, अथवा प्रमाद आतंक या लोभ के कारण अपनी दृष्टि को समर्थ एवं शक्तिशाली व्यक्तित्व आदर्श का प्रतीक मानकर शिरोधार्य करने को बाध्य है । अन्ततोगत्वा इतिहास की रचना मेधावी इच्छा-शक्ति और समकालीन परिस्थितियों की सम्भावनाओं की स्पष्ट परख द्वारा विशिष्ट मानव संकल्प करता है । स्मरण रहे कि अपनी परिस्थितियों की समझ किसी भी युग के इतिहास निर्माता के विवेक में किस स्तर की है, और किस सीमा तक अपने सम्भव विरोधियों को वह परास्त करने के लिए अपने अनुयायियों को कितना प्रतिबद्ध कर पाता है, और उनकी प्रतिक्रियाओं को अपनी प्रस्तावित योजना के साथ तालमेल कहां तक रख पाता है, यदि ऐसे निर्धारक हैं जिनका सामूहिक प्रभाव वास्तव में घटित होने वाली सम्भावना का निर्णायक सिद्ध होता है । ऐसे संक्रमण की पार्श्वगामी व्याख्या बहुत से अमूर्त तत्वों, विचारवीथियों, प्रवृत्तियों, संस्थागत पूर्वाग्रहों आदि को इसका जिम्मेदार ठहराती है, इनके दावों को सिद्ध भी नहीं किया जा सकता । सम्यक विश्लेषण, फिर भी मानव संकल्प की सम्मत केन्द्रीयता इस संदर्भ में रेखांकित करेगा ।

2.3.2 मानवीय समाज के विभिन्न आयाम

मानव संकल्प और ऐतिहासिक संक्रमण के ऊपर की चर्चा में हमने स्पष्ट रूप से मानव बोध और उसकी सचेत केन्द्रीयता को सारभूत निर्णायक कारक ठहराया है । इसके साथ ही यह भी अनिवार्य है कि यह भी पहचाना जाए कि स्वयं एकाकी इतिहास कर्त्ता कई विभिन्न आयामों में अपनी इतिहास की भूमिका का गठन करता है । वह समानान्तर कई अमूर्त आयामों से 'निजी-मंतव्य' विशेष सम्प्रेषणों द्वारा बना सकने की स्थिति तक

पहुंचता है। परिवार, परिवेश, परम्परा, जातिगत मिथक, सामूहिक स्मृति, समाज की तत्कालीन संप्रभुता, व्यवस्था और सामान्य जीवन यापन में क्रियाशील आर्थिक तन्त्र उसको अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण ढालने में सार्थक विषयवस्तु प्रदान करते हैं। कुछ चर्चा इस दृष्टि से निम्न सामाजिक आयामों को ऐतिहासिक संक्रमण की सही व्याख्या प्राप्त करने के लिए जरूरी समझा जाना चाहिए। किसी भी युग में उपलब्ध जीवन मूल्य, मिथक, साहित्य, विचारधारा, विभिन्न आर्थिक जैविक और सामान्य अपरिहार्य साधनों की संरचनाएं और उनकी पटु-अपटु व्यवस्थाएं, विभिन्न वर्गों और सामाजिक स्तरों की परस्पर विश्वसनीयता, सहकारिता सम्प्रेषण और न्याय संगत होने या उसके विरोधी होने का व्यापक बोध। समाज की शासन व्यवस्था और संचालन की दक्षता, कुशलता / अकुशलता तथा शासकवर्ग में उक्त व्यवस्था को दृढ़ता, चारुता, न्यायशीलता, स्थिर रखने के लिए सभी अशासक वर्गों की प्रशासन के निर्देशन पर प्रतिक्रियाओं का कैसा सतत अवलोकन एवं मूल्यांकन शासक वर्ग करने में सक्षम है। यह सभी आयाम स्पष्ट और भिन्न स्तरीय हैं, और इतिहास के निर्धारकों की चर्चा करते समय इनको जागतिक द्रव्य अथवा वस्तुपरक ठोस राशियों से घपलाना मानव संरचनाओं के विभिन्न धर्मों आयामों को एक छदम मूर्त्तता में स्थानांतरित करने की भूल करना होगा। मानव जीवन पदार्थ और प्रकृति प्रदत्त द्रव्यों की अनिवार्य उपलब्धियों की पूर्वापेक्षा करता है, परन्तु जीवन की पूर्ण रचना में अनेकों अमूर्त्त परानिर्धारकों को या तो न पहचान पाना या उनको नकारना भ्रामक विश्लेषण होगा। इस दृष्टि से पदार्थवादी चिंतन प्रायः समाज के मूल्यात्मक, विचार, आदर्श, नियामक तत्वों को दूसरे नम्बर के केवल पदार्थ सम्मत तत्व ठहराने की पक्षधरता प्रायः करता है। यह विश्लेषण इस दृष्टि से निसंगत है। समग्र इतिहास की सही समझ पाने के लिए यहां इस बात को पुनः दोहराना जरूरी लगता है कि मूल्य, मिथक, आदर्श स्वप्न, सम्प्रेषण, सामाजिक सहयोग और विश्वयनीयता के आयाम हर युग, जाति, देश और मानव समूहों के संयोजन में उतनी ही केन्द्रीय भूमिका निभाते हैं, जितने की उत्पादन की क्षमताएं, मूर्त्त साधन, उनके विनिमय के स्वरूप और उत्पादन संबंध।

2.4 ऐतिहासिक प्रगति के निर्णायक तत्व

ऊपर की चर्चा स्पष्ट कर देती है कि सम्पूर्ण इतिहास की संरचना में केवल किसी एक विशेष विचारक द्वारा मुखरित दावेदारी केवल किसी विशेष स्तर की संरचना को मानवीय प्रगति का एक मात्र विशिष्ट कारक, उद्दीपक अथवा उत्प्रेक्षक ठहराना तथ्यशः सही नहीं है। इस दृष्टि से विभिन्न युगों और विचारकों ने कई अत्योन्य-कारकों को यह महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी है। हीगेल और उसके पूर्ववर्ती आदर्शवादी विचारक प्रायः सार्वभौम युक्ति, आत्मा असावा परमात्मा को ही इतिहास का रचयिता सूत्रधार अथवा संचालक ठहराते रहे हैं। तदुपरांत अन्य विश्लेषकों ने मानव की समृद्धि, नख, आधिपत्य अथवा सत्ता की संप्रभुता की कुछ अन्य विचारकों ने मानव मुक्ति से अथवा सतत् मानवीय देवत्व की उपलब्धि (टायनबी) को विराट ऐतिहासिक

सभ्यताओं की असंख्य घटनाओं का मूल आधार एवं लक्ष्य ठहराया है। मार्क्स द्वारा उत्पादन के सम्बन्धों और उत्पादन शक्तियों के परस्पर तनावों से उत्पन्न वर्ग संघर्षों को इतिहास का एक मात्र प्रेरक ठहराया है। इसी प्रकार के कई प्रकृतिपरक अथवा आदर्श एवं संस्कृति परक तत्वों को भिन्न-भिन्न विचारकों ने इतिहास प्रथा का मूल कारक सिद्ध करने के यत्न किए हैं। इनमें से कई विश्लेषण नियतिवाद अथवा आध्यात्मिक आदर्शों के निर्धारणों पर विशेष बल देते हैं। उदाहरणार्थ स्पैंगलर, वीको जातीय चेतना और शिलर भाषा में मूर्त आत्मा को विधायक ठहराते हैं। कुछ समकालीन विचारक ज्ञान, न्याय समानता के अमूर्त आदर्शों को भी इतिहास का निर्णायक शुरुआत और मूल्य खोज के लक्ष्य के आधार पर उसके विकास एवं विधान का निर्णायक आंकते हैं। मार्क्सवादी और उदारवादी समाज विश्लेषक समानता मूल्यों की इस नियामक भूमिका की सिफारिश करते हैं। यह सतत् संशोधनवादी विश्लेषण कुछ दूसरे व्याख्याता नकारात्मक तत्वों, मिथों, ईर्ष्या, भय, युद्ध, महामारी, झूठ, भुखमरी, अज्ञान और सतत अराजकता की स्थायी प्रवृत्तियों को मानव इतिहास का मूल निर्धारक ठहराते हैं। (देखें: सारोकिन, स्पैंगलर, कालिंग वुड, बर्कहाइट, गुस्ताव ले बाँ, मोस्का, नीतरो)

निष्कर्षतया यथार्थ मानवीय संरचनाओं का एक विहंगम सर्वेक्षण स्पष्ट करेगा किसी एक स्तर के भावात्मक अथवा नकारात्मक कारकों को सम्पूर्ण निर्धारक ठहरा कर यह चिंतन सीमित तथ्यों पर सार्वभौम निष्कर्ष स्थापित करने की सामान्य यौक्तिक त्रुटि करता है, सभी इतिहास में रूचि रखने वाले जिज्ञासुओं को ऐसी एकांगी विचारधारा से मुक्त हो सकने का मार्ग ढूँढना चाहिए।

2.4.1 मार्क्स की प्रगति की नियतिवादी व्याख्या

इतिहास और मानव श्रम के विभिन्न विधानों द्वारा समूची सामाजिक संरचनाओं का निर्धारण होता है। यह इतिहास किन्हीं विशेष महत्वपूर्ण व्यक्तियों या उनके अभीष्ट संकल्पों द्वारा विकसित नहीं होता, हालांकि सतही सर्वेक्षण हमें प्रायः समस्त इतिहास को आकस्मिक घटनाओं अथवा उनके अभीष्ट के अराजक मन्तव्यों का फलन ठहराते हैं। मार्क्स के विरोधी फिशर या प्रसिद्ध लेखक ट्रैवेल्लिन जो मार्क्स के नियतिवादी दृष्टि कोण को निराधार एवं तथ्यों द्वारा असिद्ध दर्शाने को उत्सुक हैं, निम्न कथन करते हैं: "मेरे अधिक जानकार दोस्त इतिहास में लय, छंद और सुनिश्चित तन्त्र ढूँढने में प्रायः दत्तचित्त लगते हैं, मुझे इतिहास की सारी की सारी घटनाएं मात्र असम्बद्ध, व्यवस्थित तथ्य ही प्रतीत हुईं" (यूरोप का इतिहास, एच. एल. ए. फिशर) इसी प्रकार ट्रैवेल्लिन अपने बहुचर्चित लेख "यदि क्लियोपैट्रा की नाक टेढ़ी होती" में मार्क्स अथवा अन्य किसी भी नियतिवादी व्याख्या अथवा समूचे दृष्टिकोण को त्रुटिपूर्ण कहते हैं। उनके अनुसार जो कुछ भी वस्तुतः ऐतिहासिक जगत में हम अवलोकित पाते हैं, उसमें अन्यथा भी संभाव्यों के न होने का कोई पूर्व चिन्त्य आधार नहीं है। वह नहीं हुए से हम कदापि यह निष्कर्ष नहीं सिद्ध कर सकते कि ये हो ही नहीं सकते थे। इसी यौक्तिक दृष्टि का प्रसार मार्क्स के समकालीन समीक्षक इसाहा बर्लिन अपनी बहुचर्चित पुस्तक "ऐतिहासिक अपरिहार्यता" में पुनः स्थापित करते हैं। मार्क्स के द्वंद्वात्मक

पदार्थवाद की मार्मिक आलोचना प्रमुख इतिहासविद ई. एच. कार ने अपनी सूझ द्वारा इतिहास की सपाट पूर्व नियति की परिकल्पना को मानव चिंतन में विपरीत स्थितियों को अवलोकन करने की क्षमता से असंगत बैठता बतलाया है। मानव चैतन्य किन्हीं भी संदर्भों में जो अभी उपस्थित नहीं हो सका और जो अतीत के कूड़ेदान में पहुंच चुका है, भी विचार के लिए अनुपयुक्त नहीं पाता, और इस प्रकार जो हो रहा है और जो नहीं है के बीच तनावपूर्ण अनुभूतियों के केन्द्र में स्थित रहता है और यह तनाव उसके कई अचिन्त्य परामर्शों और विलक्षण संकल्पों के स्रोत होंगे। मार्क्स या और कोई अन्य पूर्ण रूपेण अपरिहार्यवादी ऐतिहासिक पूर्व-निर्धारणवादी व्याख्या ऐसे व्यक्ति स्वानुभूत बहु-स्तरीय आत्म-द्वंद्व की कोई प्रामाणिक समीक्षा देने में असफल होंगे। ऐतिहासिक विकास मानव क्रियाओं द्वारा सयत्न किया हुआ सपिण्डित फल है। इस दृष्टि से मार्क्स की धारणा रोचक परामर्श होते हुए भी मानवीय इतिहास की बहुआयामी छवि की अति सीमित प्रतिछाया ही पकड़ सकी है।

2.4.2 इतिहास निर्माता का आत्मबोध एवं मानसिकता

हम सामूहिक बाह्य विश्लेषण द्वारा पूर्व उपलब्ध घटनाओं को किसी विशिष्ट विधान का क्रमशः प्रस्फुटन भी समझा सकते हैं। यह स्थिति सुदूर चोटी पर स्थित पर्यवेक्षक द्वारा किसी तलहटी में भाग-दौड़ करते विभिन्न व्यक्तियों के कलापों को अनूठे विन्यासों में अभिव्यक्त कर सकने से तुलनीय है, पर ऐसे छायाकार, चित्रकार या बिम्ब रचयिता कम से जूझते प्राणियों के अंतस्थल में होने वाले संघर्ष और संकल्पों को सारमूल पकड़ सकने की दावेदारी तो नहीं करते। सार्वभौम प्रगति, हाल, संस्कृति या सभ्यताओं को निरूपित करने वाले विद्वान प्रायः अपने सार्वभौम इतिहास प्रारूपों में इन व्यक्तियों के नाना आत्मबोधों और उनसे संलग्न मानसिकताओं को केवल अर्थहीन कथा-सामग्री ठहराने का प्रायः दुस्साहस करते पाए जाते हैं। ऐसा किए बगैर वे अपने तीव्रगामी चिन्तन के वाहन पर सवार होकर पूर्ण काल कम की कोई योजना स्थापित न कर सकेंगे। तदनुसार सभी सार्वभौम विचारक, एक अकेले व्यक्ति को इतिहास में केवल हेय और अपेक्षा योग्य निरर्थकता सिद्ध करने पर सदा तुले रहते हैं। इसका सबसे सटीक दृष्टांत स्पेंगलर का सांस्कृतिक नियतिवाद है, जिससे गणित, कला, विज्ञान और कोई भी मानवीय आयाम मुक्त नहीं हो सकता; वह चाहे या न चाहे यह समूची शक्ति प्रत्येक मानवीय बोध को अनजाने ही पूर्व निर्धारित कर देती है। फ्रायड के समकालीन चिंतन ने अचेतन मन की पूर्वाभिव्यक्तियों की चर्चा करके मानव स्थित स्वायत्तकर्त्ता को भारी सीमा तक क्षत किया है। हीगेल, मार्क्स, टायनबी अपने-अपने दृष्टिकोणों द्वारा इतिहास में व्यक्ति की छद्म-अस्मिता की चर्चा करते हैं, उनका स्पष्ट सिद्धांत है कि व्यक्ति की अपनी दृष्टि केवल छलावा है, इतिहास का गुरु विराट आन्दोलित सागर उसे स्वयं अपने संकल्पों के विरुद्ध वह करने को विवश करता है, जिसका उसे कुछ भी अंदेशा नहीं होता। इसी सिद्धांत को मार्क्स 'असत्य-चेतना' अथवा

हीगेल शुक्ति की प्रवंचना कहता है । टायनबी और स्पेंगलर भी ऐसे व्यक्ति से ऊपर की सांस्कृतिक शक्तियों को वास्तविक को समझने के लिए अनिवार्य साधन ठहराते रहे हैं । समकालीन दर्शन ने इस संदर्भ में जो हल प्रथम-पुरुष की सचेतन अनुभूतियों को अपेक्षाकृत पदार्थपूरक तृतीय पुरुषीय वात्ता में सुनियोजित किए जाने के लिए उपयोगी पाए हैं, यहां भी प्रयोग हो सकते हैं । किन्तु इतिहास की परख और समझ के दायरे में प्रथम पुरुष ही महत्वपूर्ण है, उसे निष्कासित करके अमूर्त प्रत्ययों का खिलवाड रचना बौद्धिक व्यायाम हो सकता है, फिर यह इतिहास की पहली शर्त अर्थात् मानव संकल्प को ही अपदस्थ करेगा ।

2.5 संक्रान्ति के वस्तुनिष्ठ एवं वैयक्तिक कारक

ऐतिहासिक क्रान्तियां मानव प्रगति की मील का पत्थर मानी जाती हैं । सपाट और अपेक्षाकृत नीरव माहौल, जिसे सामान्य तौर पर निर्बाध आवृत्तियों में स्वस्फूर्त सामाजिक ताना-बाना मानव समाज महसूस करता रहा है । विशेष परिस्थितियों में एकाएक ढह जाता है, सभी सामाजिक परम्परागत रूढ़ियों को धक्का लगता है, लीकें और जाने पहचाने शासन तन्त्र की पूर्व-चालित व्यवस्था के कलपुर्जे एकाएक स्तब्ध हो जाते हैं । सुविधा और वर्चस्व भोगी संभ्रांत वर्गों में भय और दुविधा घर करती है, सम्भव और वास्तविक हिंसा उथल-पुथल अनुशासन और सुरक्षा का पलायन विस्फोटन स्तर तक समूचे जीवन में अराजकता का व्यापक प्रभाव मुखर करता है । साथ ही साथ नए शक्तिशाली नेतृत्व असंतुष्ट, उपेक्षित एवं पददलित सर्वहारा वर्गों के नए उद्बोधन और आमूल चूल परिवर्तन की मांगों को मूर्त कर सकने योग्य नई संस्थाओं और व्यवस्थाओं को स्थापित करने में दत्तचित्त होते हैं । इतिहास का निरपेक्ष विश्लेषण इस संजीदा सच्चाई को अकाट्य प्रदर्शित करता है कि मानव क्रान्तियों के अवलोकनों से आज तक विक्षिप्त क्रान्तिकारी हरावल दस्ते अपनी अक्षमताओं के शिकार न हो जाए, ऐसा कोई स्वर्णिम पद प्रशस्त नहीं कर पाए हैं । प्रायः क्रान्तियां अपने जनकों और चहेती संतानों को ही निगल जाती है । केवल वह क्रान्तिया ही प्रभावशाली दूरगामी परिवर्तन छोड़ सकी हैं, जो जन मानस की घुमड़ती पीड़ा, क्षोभ, मत्सर और विस्फोटक तोड़-फोड़ की तीव्र लालसा पर संयम, युक्ति और व्यवस्था द्वारा लगाम लगा सकी हैं, और उफनी रक्त लौलुपता को खत्म करके सामान्य मानव की चैन और 'आश्वस्त-सामाजिकता' की भूख को उसके पूर्व-स्थित आक्रोश के ठण्डा पड़ने के पहले ही नई गढ़ी व्यवस्था की विश्वसनीयता मूर्त कर सकी है ।

क्रान्तियों का अध्ययन प्रायः उनके हो जाने के बाद ही सिंहावलोकन के रूप में विचारकों द्वारा होता है । इतिहास के पास स्पष्ट कारणों का पता लगा सकने का कोई असंदिग्ध पैमाना नहीं होता । क्रान्तियां सामूहिक विस्फोट के रूप में अप्रत्याशित घटनाएं हैं, जिन्हें किन्हीं पूर्व संज्ञान द्वारा निवारण कर पाना या मूर्त कर पाना प्रायः असम्भव होता है । एक ओर कुशल सुविधा भोगी प्रशासक स्वयं अपने चक्रव्यूहों के बाहर झांक सके उनकी समग्र कुशाग्रता के बावजूद उनकी निजी पूर्वाग्रहों और अप्रिय तथ्यों के प्रति उपेक्षा उनको इतिहास के कूड़ेदान में फेंके जाने को विवश होने में देखी जा सकती है । इसी के साथ-साथ उत्कृष्ट क्रान्तिकारी नेतृत्व भी प्रायः अपने निजी भाववेगों से सामूहिक त्रास एवं लोक हित के दावों को

घपलाए जाने से नहीं बच पाते, तदनुसार उनकी क्रान्तिकारी गतिविधियां जिस सीमा तक क्रान्ति की सफलता के लिए सामान्य नागरिकों द्वारा चलाई जाये और उनके लिए अनेकों व्यक्तिगत हितों का बलिदान किया जाए, प्रायः असमय में धूल चाटती हैं, और अनेकों क्रान्तिकारी लालसाएं दुष्कर मरीचिका बनने के लिए विवश होती है। क्रान्ति के आधार सिंहावलोकन द्वारा अकाट्य प्रायः आंके जाते हैं, किन्तु इतिहास का बेबाक अध्ययन उन सभी पर्याप्त आधारों अथवा निर्धारकों की उपस्थिति ऐसे कई अन्य उदाहरणों में ढूँढ कर संकेत कर सकता है जहां उस समाज में कोई परिवर्तन नहीं उपजता। इसी के विपरीत ऐसे कई अन्य दृष्टांत भी दिखाई पड़ते हैं, जहां बिना किसी अत्यधिक सीमा तक विस्तृत रोष, त्रास या उत्पीड़न के भी में मेधावी क्रान्तिकारी विराट एवं व्यापक उथल-पुथल शुरू करके स्वयं उस पुथल-पुथल के कंधों पर बैठकर, अगुआ बनकर दूरगामी प्रभावी सामाजिक पुनर्चना करने में सफल हो जाते हैं। निष्कर्ष तथा वस्तुनिष्ठ जागतिक स्थितियां यदि एक सीमा तक जन मानस में आक्रोश एवं उत्पीड़न का बोध न बैठा पाई हो तो न तो अदूरदर्शी शासक (जैसी विख्यात साम्राज्ञी मेरी अन्तवाइन्ते जो अपनी भूखी प्रजा को रोटी के अभाव में केक खाने की सलाह देती थी) और न कुशल राजद्रोही जैसे मादाम दाफ्रागे (देखें : डिकंस का बहुश्रुत उपन्यास 'दो नगरों की कथा) जो अपना कसीदा काडती रहती है जबकि भीड़ बच्चे के मासिंगनर की बगधी से कुचले जाने पर सिक्की बगधी के फर्श पर ठुक से वापस पहुंचा देती है, चूंकि अभी वह समुचित क्षण दूर है, जब नृशंस सम्राटों और राजपुरुषों की समिधा क्रान्ति यज्ञ में होगी। क्रान्तियों की विषम परिस्थितियों के संघात या उत्पादन संबंधों के आन्तरिक अन्तर्विरोधियों मात्र से नहीं उपजती, यह अनिवार्य कारण हो सकते हैं, किन्तु पर्याप्त नहीं। क्रान्ति में उप-निर्धारकों की भी मूलभूत भूमिका होती है। सारी की सारी आग पर बैठी क्रान्तियां अपने अग्रदूत वर कारण करने की बाट में न मालूम कितनी वरमालाएं काल कवलित करती रहती हैं, रो-रो कर आंखें फोड लेती है। कुछ नहीं होता। अमावस की कालस और उत्पीड़न का कालकूट जनमानस पीढीयों पीता है। फिर अनायास किसी एक मानव-संकल्प में इस्पाती तैवर वर करता है, क्यों? यह ही तो इतिहास निर्माता की भूमिका का कर्म है जो विचारक और विद्वान ऐसा होने के उपरान्त महान पोथियों में चर्चा करते हैं, पर होने के पहले केवल मानव के अदृष्ट संकल्प और अस्तित्व का सार रूप है। जिसके कोई पूर्व निर्धारक चिन्त्य नहीं हैं। क्या पोरबंदर की मिट्टी में कहीं लौह चूर्ण भी था? क्या पीटर मारिजबर्ग रेलवे-स्टेशन पर पिटकर गाड़ी से धकेले जाने वाले कुली बैरिस्टर मोहनदास गांधी को भी स्वयं यह मान था कि यह तिरस्कार उस क्रान्ति की पहली थाप थी, जो उस साम्राज्यशाही का अन्त करेगी, जिस पर कभी सूरज अस्त नहीं होता था? कब कहां एक चिंगारी धधकता दावानल बनेगी, राम जाने। पर चिंगारी जरूर-जरूर चाहिए, यह वही मानव रीढगत संकल्प होता है जो गांधी में था, माओ में था। और बालक लेनिन की रूंधी भर्राई आवाज और अनवरत बहते आँसुओं में था, जो उस अभागे दिन उसने अपने गांव में अपने शहीद भाई एलैकंजैडर की जारवादी साम्राज्यशाही द्वारा दी गई फांसी के बाद कुछ पडोसियों और बेबस विधवा मां के साथ कब्रगाह में गिराए थे। स्मरण रहे कि महान क्रान्ति-नायक लेनिन अपने सारे संताप को अंदर ही पी गया था, अनेकों जिल्दों में प्रकाशित उसके लेखन में इनका कोई हवाला नहीं, उस दिन और

क्षण के बाद कुली बैरिस्टर, महात्मा ऋषि अजेय, अघोरी ताण्डव रचियता हो गया, अविचल, धीर, सर्वमान्य । तो लेनिन सर्वहारा गुलामों का साक्षात मसीहा । सत्याग्रह, अक्टूबर क्रान्ति लांग मार्च इन आत्माओं में उपजे वज्र संकल्पों की शनैः शनैः अवमूर्त्तन की गौचर अवस्थाएं मात्र हैं। यह सब वस्तुनिष्ठ तथ्यों और उनके समूहों में परिभाषित करने की कटुमुल्लई इतिहास के मर्म से छूट जाना है।

2.5.1 ऐतिहासिक अवमूर्त्तनों के वस्तुनिष्ठ आदर्श और इतिहास के नायकों की अभिलाषाएं

चूंकि वास्तविक घटनाओं के निरंतर जुड़ते जाने के फलस्वरूप हम ऐतिहासिक कालक्रम में इतिहास नायकों के मंतव्यों को केवल उनके द्वारा अर्जित प्रभावों को श्रृंखला द्वारा जानते हैं। हमें यह जानकर काफी विस्मय होता है कि मानव समाज में घटित अनेकों नए अनुष्ठान जिस रूप में हमें परावर्ती युगों में दिखते हैं, उनके प्रथम सर्जनकर्त्ताओं की अभिलाषा उनसे कभी-कभी खासी भिन्न थी । इसका अच्छा दृष्टांत अमरीका की खोज है । दोनों विख्यात नाविक वास्कोडिगामा और क्रिस्टोफर कोलम्बस केवल अत्यधिक उल्लसित भाव से सोने की चिड़िया' जलमार्ग से भारत में रह कर वहां से सम्पत्तिवान बन कर लौटना चाहते थे । जबकि कोलम्बस ने एक नया महाद्वीप ढूंढा और समूचे यूरोप को अपरिमित सीमा तक अपने देशों में अनुपयोगी, अपराधी, बागी एवं भारस्वरूप आबादी को अन्यथा भेजने का अवसर दिया । यह दूसरी बात है कि इसी नए उपनिवेश में कहीं अधिक मुखर जनतांत्रिक व्यवस्था एवं टैक्नालाजी की तीव्र प्रगति हुई और कालांतर में यूरोपीय समाज की कुण्ठाग्रस्त समाज रचना को नव-मानववादी नए लक्ष्य इस नवोदित उपनिवेशवादी दृष्टि से मिले। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा काल कवलित मुगल साम्राज्य शाही के अस्तगामी सूरज से फरमान मांगने वाले अंग्रेज डाईरेक्टरों को क्या अभिलाषा हो सकती थी कि एक दिन वे ब्रिटिश सम्राट के सरताज में सबसे बहुमूल्य कोहिनूर हीरा हिन्दुस्तान को बनायेंगे । अथवा इस बीहड़, टूटे, कबीलों में भटके पुराने देश को नया जनतंत्र, औद्योगिक समाज बनाने के अनजान कारक होंगे। सांस्कृतिक इतिहास में इस तथ्य का और भी स्पष्ट निखार सामने देखा जाता है । भारतीय धर्मशास्त्रियों ने वर्णाश्रम की परिकल्पना आध्यात्मिक साधना और मोक्ष केन्द्रित मूल्यों के सतत् चरितार्थ के लिए बनाई थी । पर मानवीय कुत्सित लोभ, प्रमाद एवं सुविधाभोग की ललक ने क्या अधोगति भारतीय समाज की कालांतर में नहीं कराई । देवदासी प्रथा, छुआछूत, पंडागिरी, निडल्ले साधु सम्प्रदायों की आपाधापी क्या भारतीय मनीषा के उन्नायकों की पुरुषार्थ और आध्यात्मवाद की अभिलाषाओं के अनुरूप ढाली जा सकीं। भ्रूण हत्या, सती, नारी उत्पीडन मनु के विधान की विरूप परिणतियां हैं । ऐसे विद्रूप और भी हैं।

वस्तुतः आदर्श और अभिलाषाएं चाहकर भी अलग-अलग परावर्ती युगों और वर्गों के निजी प्रमाद, मत्सर, कुत्सित आपाधापी और विसंगति पूर्ण रूपायनों द्वारा कभी भी अवमूर्त्तन की प्रक्रियाओं के दीर्घ कालिक क्रमिक विकास में अनिवार्य संयम और मूल्य-प्रयोग के वांछित आयामों को उजागर न करके इतिहास के नायकों की खिल्ली ही उड़ती

है । भारत के समकालीन युग में हमारे विधान में चर्चित विधायकों की निजी वर्चस्व की न मिटने वाली भूख हमारे जननायक गांधी की अच्छी मट्टी पलीद करा रही है।

2.6 क्या सम्पूर्ण मानव जाति के विकास का कोई एक सुस्पष्ट प्रारूप है

अत्यंत संक्षिप्त आधार पर इस प्रश्न का उत्तर देना हो तो यह जा सकता है कि पूर्ण, सर्वसम्मत प्रारूप तो निश्चित ही नहीं माना जा सकता, क्योंकि अन्तर-सांस्कृतिक अध्ययन बीहड़ विषमताओं और वैभिन्न्यों को हर पद, अवस्था एवं क्षेत्र में बार-बार हमें पहचानने को मजबूर करते हैं । सारी सम-सामाजिक सार्वभौम संस्कृति, साधनों और औद्योगिक पहलों के बावजूद आज भी काले, पीले, भूरे, श्वेत मानव समूहों के बीच न पट सकने वाली खाई ज्यों की त्यों बनी हुई है । इसका स्पष्ट रेखांकन प्राथमिक अनिवार्यता है, इसे कर चुकने के बाद यह कहा जाना भी सही है कि पिछड़ी और स्तब्ध सामाजिक इकाईयां जैसी ही जीवन शैली, स्तर और सुविधा प्राप्त करने की स्थिति में आ पाती हैं, अपनी सारी विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर को ताक पर रखकर उपभोक्ता प्रतिमानों, बाजारू जीवन पद्धति की ओर लम्बे डग से बढ़ती है। जापान, चीन, रूस, भारत, ईरान, अरब देश, तुर्की या अफ्रीकी राष्ट्र इस संदर्भ में सम-सामयिक यूरो -केन्द्रित व्यवस्था के अनुगामी स्वेच्छा से बनते देखे जाते हैं । जहां इन सभी कबीलीवादी प्रदेशों में परस्पर स्पर्धा, असहिष्णुता और कटुता बदस्तूर बढ़ रही है । वहीं इन सभी देशों में पाश्चात्य जन जीवन की बेअक्ली नकल भी उतनी ही तेजी से बढ़ती देखी जा सकती है, इस संदर्भ में सारी सांस्कृतिक नानात्व की जन-दुहाईयों को पूरी तरह कर चुकने के तुरंत बाद सभी इन समाजों के जन-प्रतिनिधि अपनी सांस्कृतिक विरासतों को डालर हाट में नीलाम करना चाहते हैं । यह प्रारूप शायद बीसवीं सदी से पहले मानव समाज में पहले कभी इतना नहीं उभरा, हालांकि स्पैंगलर और टायनबी का अध्ययन स्पष्ट करता है कि रोमन जगत, मिस्र, ग्रीक, सुमेर, चीन, भारत ने भी अन्योन्य कालों में किन्हीं सार्वभौम प्रारूपों की परिकल्पना क्रियान्वित करनी चाही थी, आज यह प्रारूप ज्यादा विश्वसनीय बनता दिखता है । क्या यह तथ्य मानवता की एक अनूठी प्रगति का द्योतक है?

2.6.1 समकालीन सार्वभौम इतिहास में अराजक विशिष्टों की समस्या

क्या यूरोपीय औद्योगिकरण का शीर्षस्थ समसामाजिक प्रारूप समकालीन सार्वभौम इतिहास का शिरोमणि लक्ष्य है? क्या चीन और भारत जैसे 5000 वर्ष पुराने सतत सांस्कृतिक आयाम केवल इस प्रकार के सामान्य लक्ष्य के अपवाद से ऊपर कोई समस्या इस तथाकथित इतिहास की सार्वभौम व्याख्या के लिए उत्पन्न नहीं करते । क्या समूची मानवता का एक और केवल एक केन्द्रीय धुरी लक्ष्य है, जिसकी ओर चाहे अनचाहे सभी देश, संस्कृतियां, समाज आगे पीछे पहुंचने का प्रयत्न करेंगे? इसके विरोध में यह स्पष्ट पहचाना जा सकता है कि संसार के कई महाद्वीपों में सैकड़ों सरल समाज इतिहास की बनावट और लक्ष्यों से पूरी तरह अप्रभावित कांगों, नाइजर,

नील, अमेजन, कोलरेडो, दैन्युब, जैम्बिसी, ब्रह्मपुत्र, इरावदी, सिंधु और गंगा की कंदराओं और प्रशान्त और हिन्द महासागरों के अनगिनत द्वीपों में अपनी अनूठी अनैतिहासिक कालातीत सातत्य की सामाजिकता में आज भी ऐसे धुरी सार्वभौम लक्ष्यों की मखौड़ उड़ाते जिंदा हैं। इनकी उपेक्षा करना उचित न होकर एक प्रतिस्पर्धी कबीला परस्ती से ज्यादा कुछ नहीं है। इस दृष्टि से मार्क्स द्वारा भारतीय समाज की अधोगति का 19वीं सदी के उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद के समक्ष पददलित हो जाना, जिसे उसका विश्लेषण आर्थिक भाग्य न होकर राजनीतिक पतन था, जिसे उसका विश्लेषण पहचान सकने में असमर्थ रहा। उसकी एशियाई उत्पादन तन्त्र की धारणा भी व्यर्थ है।

2.7 जातीय नानात्व एवं विशिष्ट परम्पराएं

यह तो इतना ठोस तथ्य है कि इसे अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। स्पैंगलर और अनगिनत नृतत्व शास्त्रियों ने अपने मूर्त्त संस्कृतियों के विश्लेषणों द्वारा परम्पराओं के नानात्व की धारणा को स्पष्ट कर दिया है। मानव प्राणी विज्ञान की अवधारणा है। शारीरिक और काया के साथ मानवीय बोध और चिंतन के विशिष्टों को झुठला नहीं सकते। प्रकृति पर आधिपत्य, औद्योगिक क्षमताओं के निरन्तर उन्नय और विज्ञान की निस्सीम प्रगति के फलस्वरूप समकालीन पाश्चात्य की सामरिक विजय की कीर्ति पताका के समस्त संसार पर गाढ़े जाने के बाद 20वीं सदी में ऐसी परम्पराओं की समानता की बातें कुछ अत्यधिक आदर्शवादी लग सकती हैं। फिर भी, मूल्यों के आधार पर जातीय परम्पराओं को विशिष्ट माना जाना चाहिए और उनकी परस्पर सामरिक क्षमताओं या औद्योगिक उत्पादन सामर्थ्य को इस तराजू के पलड़े पर नहीं लादा जाना चाहिए। माना जाता है तो फिर किसी पोलीनेशियन, जुलू लामा, भील या संथाल संस्कृति को लंदन, पारी, नई दिल्ली, बैजिंग या टोक्यो, न्यूयार्क या सिडनी की नागर छटा से कैसे कम अर्थपूर्ण हैं, इतिहासकार के पास इसे जानने का कोई पैमाना नहीं है। प्रारम्भ, मध्य से अन्त तक शोषित, सर्वहारा, निरक्षर, पददलित, कमजोर, भूखे, नंगे, बेसहारा कोटि-कोटि काले, भूरे, पीले बच्चे भी क्या किसी आज अपदस्थ परमेश्वर की संतान नहीं हैं, उनके गानों और आहों में क्या उगते चांद और गोधूलि के गहराते अंधेरे ध्वनित प्रतिध्वनित नहीं होते, क्या उनमें किसी तीस्ता, गंगा, जमुना, महानदी, गोदावरी, कावेरी, अमेजान, नील, दान्युब, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, सिंधु या चिनाव की कलकल नहीं उमड़ती, घुमड़ती वे भी क्या उतनी है। मनमोहक अर्थपूर्ण मानव प्रतिमाएं नहीं हैं जितनी किसी सिस्तनि चैपल में माईकेल एंजेलों ने उकेरी थी, या किसी गुमनाम हिन्दुस्तानी वास्तुकार ने कोनार्क या चिदाम्बरम् की मन्दिर वीथियों पर तराशी हैं। क्या पिकासो के चित्र अजन्ता के गुमनाम चित्तेरों को हरा सकते हैं? झुठला सकते हैं? उन्हें शक्ति संतुलन की तलवार की धार पर आंकना संस्कृति का विद्रूप और परम्परा का निरादर करने जैसी असंगति हैं। प्रगति पार्थिव प्रतिमानों तक ही सीमित नहीं मानी जानी चाहिए। आयाम बंदूक की गोली के अलावा भी हैं।

2.8 क्या सम्पूर्ण मानवीय इतिहास किसी केन्द्रीय लक्ष्य को प्राप्त कर रहा है?

हमारी अभी तक की चर्चा इस इकाई में साफ तौर पर यह सिफारिश करती रही है कि स्वयं मानवीय संस्कृति के लिए उन्मुक्त लक्ष्यों का निर्माण प्रत्येक सामाजिक दौर में पूर्व निर्धारित नहीं होता। परम्परा, चिंतन, सर्जनशीलता, सम्प्रेषण, अनुभूति और इन सभी तत्वों के परस्पर मिश्रण से विभिन्न अवसरों पर इतिहास के नवोन्मेष सामने आते हैं और नई मानवीय मूल्यधारणाएं गढ़ी जाती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ऐतिहासिक संक्रमण को किसी एक महत केन्द्रीय लक्ष्य से सम्पृक्त केवल मानव के इतिहास के समाप्त होने के बाद उसके पूरे विश्लेषण करके ही रेखांकित किया जा सकता है। जब तक मानव मूल्यान्वेषण का सतत प्रवाह पूर्ण रूप से अवरुद्ध नहीं हुआ है, किसी भी परम्परागत दैवी, आर्थिक अथवा मानवीय व्यवस्था या आदर्श का पुनर्मूल्यांकन और परिवर्तन मानव का इतिहास निर्माण की क्षमता का द्योतक होकर चिन्त्य है, सम्भव है। यह ही एक प्रश्न का उत्तर यहां हमें सही समझना चाहिए। मानव संस्कृति की आन्तरिक योजना में मौलिक लक्ष्यों का पुनःपरीक्षण एवं नवीनीकरण मानव की स्वायत्तता का सहज तथ्य है। किसी भी केन्द्रीय पूर्व प्रत्याशित आदर्श को बदला जा सकता है।

2.8.1 नाना जातीय परम्पराएं अन्योन्य विशिष्ट मूल्य परिप्रेक्ष्य व्यक्त करती हैं

अभी जो चर्चा पिछले खण्ड में पूरी हुई उसका यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकाला जाना चाहिए कि संस्कृति के विभिन्न अवमूर्तन परस्पर पूर्ण रूप से अबोधगम्य है। उन्हें किसी भी प्रकार के संवाद से जोड़ना भूल है। कमी-कमी स्पैंगलर की अतिशयोक्तियों से ऐसी ध्वनि मिलती है, पर यह भी इतना ही सच है कि बाहरी संस्कृति का प्राणी भी सायास चिन्तन द्वारा यदि पूरी तरह नहीं तो कुछ भेद के साथ अन्यथा उपार्जित सांस्कृतिक उपलब्धियों को अपने मंतव्यों में कमोबेशी स्थान दे सकता है।

मानव जाति की एकात्मता और उसके सह-अस्तित्व की आकांक्षा और इस मानव की रचित स्वायत्तता आश्रित मूल्य उपलब्धियों के सातत्य की आकांक्षा सारी स्थानीय विशेष मूल्याभिव्यक्तियों की परस्पर खाईयों के रहते हुए भी सर्वमान्य है। कहीं न्याय एवं समता पर अधिक बल होगा, तो कहीं स्वायत्तता पर, तो कहीं परस्पर समन्वय और परस्पर सहयोग और सामाजिक दक्षता पर। कहीं एकांगी रचनाधर्मी-कृतित्वशीलता और परानुमसिक आध्यात्मिकता को सर्वोपरि आकांक्षा या परमार्थ ठहराया जाता है। किन्तु यह सारी मूल्यात्मक वैविध्य परस्पर असम्प्रेषित नहीं हैं, और न इन्हें पूरी तरह से कोई भी संस्कृति अपने विशेष दृष्टि बिन्दु को मूल आग्रह मानते हुए भी पूरी तरह अस्वीकार कर देगी। इनको संवाद और परस्पर-परिबोधन सम-सामायिक दृष्टि चेतना और एकाएक समानान्तर आमुख होने के संदर्भ में अत्यंत अनिवार्य है, यदि मानवता युद्ध, मत्सर और क्रूर संस्कृति घाती सामूहिक आत्म हत्या के लिए बहुत उत्तेजित नहीं है तो। इन सारे विपरीत मूल्यान्वेषणों की परस्पर टक्कर और प्रतिस्पर्धा के बीच ही सम-सामायिक सांस्कृतिक संक्रमण को अपना ओजस्वी नवविधान ढूंढना है। इन मूल्य

वैविध्यों का परिमार्जन और संगति की पहचान समकालीन जगत के भविष्य की कार्य सूची है।

2.9 इकाई का सारांश

इस इकाई के माध्यम से हमने इतिहास संक्रमण के वैविध्यों और जन्मी मूल्याभिव्यक्तियों की परस्पर टकराओं और प्रभावशाली प्रवृत्तियों की स्वरूप रचना स्पष्ट की। हमने इस तथ्य पर खासा जोर डाला कि प्रगति केवल एक सूत्रीय मापदण्ड द्वारा नहीं आंकी जा सकती। प्राचीन और अविकसित समाज जो आज औद्योगिक समाजों की लकड़क से पीछे धकियाए जाकर कुछ सहमें कुछ भयभीत होकर अपनी मूल्याभिव्यक्तियों के प्रति शंकाकुल दिख रहे हैं। ऐसा कुछ पिछली तीन शताब्दियों के औद्योगिक क्रान्ति के बाद पाश्चात्य के उपनिवेशवाद का समूची धरती पर सामाजिक और राजनीतिक वर्चस्व जम जाने के कारण हुआ है। किन्तु यदि प्रगति के प्रतिमान मात्र उपभोक्ता को सतत् व्यापक मांगों की पूर्ति न होकर चिंतन, नैतिकता, सामाजिकता, स्वायत्तता और सहयोग भी ठहराये जाएं तो काल में सभी परावर्ती समाज परिभाषेय रूप से पूर्वगामी तथाकथित सरल और कृषि आधारित संस्कृतियों से अधिक प्रगति की आधारशिला पर बैठे नजर नहीं आयेंगे। मानव अपनी संभावनाओं में चिरमुक्त रह कर प्रत्येक युग, देश संस्कृति में पैदा होकर नवोन्मेष से मूल्याभिव्यक्तियां करता रहा है। काल की असमता से मूल्यों का महत्व निर्धारण नहीं होना चाहिए।

2.10 अभ्यास के प्रश्न

1. मार्क्स के नियतिवादी इतिहास सिद्धांत की व्याख्या करो?
2. क्या प्रगति का एक सूचकांक पर्याप्त है?
3. इतिहास निर्माता किस सीमा तक इतिहास की सृष्टि के लिए मुक्त है?
4. जो एक युग में मूल्य समझा जाता है क्या वह अन्य युगों में असंगत दोष भी ठहर सकता है? क्या इस प्रकार हम सारे प्रगति के प्रतिमानों को भी युग सापेक्ष ठहरा सकते हैं?
5. क्या सभी समाज युगीन अवस्थाओं द्वारा मानव स्वायत्तता की ओर सतत् बढ़ते पाए जाते हैं?

2.11 संदर्भ ग्रंथ

- | | |
|---------------------|---|
| 1. Bury J.B. | Idea of Progress |
| 2. Berlin Isaiah | Historal Inevitability |
| 3. Bloch Marc | Feudalism |
| 4. Braudel Ferdiand | Capitalism and Material Life. |
| 5. Carr E.H. | What is History? (Also in Hindi) |
| 6. Collingwood R.G. | Idea of history. |
| 7. Croce B. | History as story of liberty |
| 8. Daya Krishna | Consideration Towards A theory of Social Change |

- | | |
|--------------------|---|
| 9. Goel D. | (a) Philosophy of History |
| 10. Goel D. (Edit) | (b) Philosophy & Social Change |
| 11. Hegel GWF | Lectures on Philosophy of History |
| 12. Jaspers Karl | Origin and Goal of History |
| 13. Koh. A. R. H. | Wheels of History |
| 14. Marx K. | (a) Communist Manifesto |
| | (b) Grundrirs (c) Economic |
| 15. Spenger O. | Decline of the west 2 Vols. |
| 16. Sri Aurobindo | The Human Cycle |
| 17. Toynbee A.J. | (a) A study of History XII Vols. |
| | (b) Civilization of Trial (c) A Historian's |
| | approach to religion |
| 18. Traveyan G.M. | Autobiography and other essays |

इकाई 3

इतिहास, विज्ञान और नैतिकता

इकाई की रूपरेखा

- 3.0 उद्देश्य ।
- 3.1 प्रस्तावना ।
- 3.2 इतिहास क्या है?
 - 3.2.1 इतिहास के स्रोत और साधन।
 - 3.2.2 इतिहासवार्ता में व्यक्तित्व का सवाल।
 - 3.2.3 इतिहास और नियतिवाद।
 - 3.2.3.1 इतिहास वृत्तांत और इतिहासकार की परिकल्पनाएँ।
 - 3.2.4 इतिहासकार के मूल्यांकन और मानव मूल्य।
- 3.3 विज्ञान, नीति, भावोन्मेष।
 - 3.3.1 विज्ञान और समाज विज्ञान।
 - 3.3.2 विज्ञान का इतिहास और समाज विज्ञान।
- 3.4 नैतिकता।
 - 3.4.1 नैतिक मूल्यों की सापेक्षता का इतिहास।
- 3.5 नैतिकता, विज्ञान और इतिहास ।
 - 3.5.1 मानवीय अस्तित्व एवं मूल्य।
 - 3.5.2 सर्वकालिक आधार मूल्य।
- 3.6 इतिहास की सीख। निष्कर्ष।
- 3.7 सारांश।
- 3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न।
- 3.9 संदर्भ ग्रंथ
- 3.0 उद्देश्य

इस इकाई द्वारा समूचे इतिहास के स्वरूप का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया जायेगा । क्या इतिहास केवल व्यतीत जीवन वृत्त का अवलोकन मात्र है? क्या जो भी हुआ था केवल होने मात्र से इतिहास का विषय बन जाता है? तो फिर मानवेतर प्राणियों के जीवन के तथ्यों और उनके परिवर्तनों को भी इतिहास अपने अध्ययन का विषय क्यों नहीं बनाता? जो कुछ कोई भी मानव अपने जैविक निर्वाह के लिए करता है और जिससे मानव व्यवहार का निर्धारण एवं परिवर्तन हुआ है, जैसे खाद्य, विकास, पाचन, रोग, महामारी, अकाल, अर्ध - संरचनाएँ विधान, राज्य, धर्म, कला आदि सभी कुछ अनिवार्यतया इतिहास के अध्ययन क्षेत्र में घर नहीं कर सकता । यह तो प्रायः निर्विवाद सहज उचित मानना चाहिए कि इतिहास केवल उन प्रक्रियाओं, घटनाओं और सार्वजनिक विषयों को अपने अध्ययन का विषय मानता है, जो

मानव संस्कृति के उत्तरोत्तर गठन पर प्रभाव डालते हैं। यहाँ हमारा उद्देश्य इतिहास के ज्ञान की यथा सम्भव प्रामाणिक व्याख्या देना और इसका तदर्थ समाज विज्ञानों से अन्तर तथा मानव को नैतिकता की खोज से इसके रिश्ते का निरूपण करना है। क्यों इतिहास भी एक समाज विज्ञान है, क्यों इतिहास अमूर्त विकास और परिवर्तन के नियमों की खोज नहीं करता? इस इकाई के पाठ से यह आशा की जा सकती है कि इतिहास और विज्ञान के मूलभूत भेद को हम अभिव्यक्त कर सकें। इतिहास में प्रारम्भ से अन्त तक केवल विशिष्ट घटना, चरित्र, कृति और प्रक्रिया की पूर्ण संवेदनशील पुनर्रचना अपेक्षित होती है, इसके विपरीत विज्ञान सम्भव अमूर्त चरों और उनके विन्यासों को पुरस्कृत करके समस्त समाज को एक आदर्श खाका या प्रारूप प्रतिपादित करने का यत्न है, फिर वह तन्त्र एक समकालीन कालयोजना में हो, या विभिन्न संक्रमणों द्वारा काल श्रृंखला में प्रस्फुटित हो। यहाँ हम नैतिकता के मूल स्वरूप पर भी विचार करेंगे। इतिहास और नैतिकता के द्वारा प्रतिपादित मूल्य किन रिश्तों का संकेत करती है? साथ ही इतिहास संज्ञान और विज्ञान अपनी रचना। और उपयोगिता में शाश्वत सत्यों की संकलन विद्या में खासे परस्पर विरोधी हो सकते हैं, हम उन्हें जानने का यत्न करेंगे।

इस इकाई में सर्व प्रथम इतिहास, विज्ञान और नैतिकता की अवधारणाओं की व्याख्या की जायेगी, तदुपरांत इन विभिन्न अवधारणाओं के परस्पर संबंधों को रेखांकन दिया जायेगा। क्या नैतिक आदेश इतिहास और वैज्ञानिक खोजों के अपने क्षेत्र में संज्ञानात्मक प्रयासों पर अधिकारी अनुशासन लागू कर सकते हैं? क्या विज्ञान और सम-सामयिक कला के अनुरूप इतिहासकर्मी भी पूर्ण रूप से मूल्य-निर्पेक्ष हो सकता है? अथवा कुछ असमाजिक विषयों को इतिहास में भी उसी सीमा तक आपत्तिजनक पाया जायेगा, जैसे यौन विकृतियों, उन्माद, हिंसा, क्रूरता, मतांधता, धार्मिक विद्वेष आदि को नैतिक दृष्टि से काव्य, कला, नाटक या कथा साहित्य में अभिव्यक्त करना अथवा उद्दीपन देना आत्यंतिक रूप से हेय एवं कलुषित ठहराया जाता है? इस इकाई में इतिहास की बौद्धिक संरचना का वैशिष्ट्य निरूपण पर केन्द्रित होना ओर उससे सम्बन्ध विज्ञान की सार्वभौम दृष्टि और नैतिक मूल्यों के गरिमामय अन्वेषण कैसे 'अन्तरबिद्ध' हैं, यहाँ हम स्पष्ट करने में प्रवृत्त होंगे।

3.1 प्रस्तावना

'इतिहास' की समझ भी गहराई से पकड़ी जानी ज़रूरी है ! सामान्यतया राजनीति के पूर्ववर्ती चरण जो भावी और सम-सामयिक सामाजिक संरचनाओं और आर्थिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं के संधान में कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव एवं दिशा बोध देने वाले वृत्तांत सिद्ध हों उन्हें इतिहास की धुरी चर्चा माना जाता है। इस रस्मी परिभाषा की कुछ नई रद्दोबदल की जरूरत पिछली पीढ़ी के इतिहास चिन्तन में अनुभव की गई है। पिछली पीढ़ियों ने लीक-चालित काल खण्डों, राजनीति के वर्चस्व और एक रेखीय सार्वभौम मानव जाति के विकास में अदुविधाजनक आस्था पर अनेकों प्रश्नचिह्न लगा दिये हैं। जहां की एक ओर परम्परागत सामाजिक एकता पर आज अनेको संदेह उठ रहे हैं, वहीं एक ही समाज के अन्तर्गत विभिन्न अवयवों की परस्पर निर्वसनता आंचलिक संस्कृतियों की सतत् परस्पर खींचतान, शासक और शासितों की परस्पर अनबूझी लड़ाई और विरोध आज बिना मुलम्मे के पहचाने जाने के लिए आतुर है। गौरवान्वित

राष्ट्रीय परम्पराओं के मुखौटों का खोखलापन और अपेक्षाकृत लोक स्मृति एवं लोक-कथा की मौखिक अजस्रधारा को भी इतिहास की अधिक शासकों के औपचारिक विवरणों के समानान्तर चुनौती के तेवर के साथ समझे जाने की सिफारिश आज के इतिहास की अपनी नई दिशा ढूँढने का प्रतीक समझा जाना चाहिए।

आज का इतिहासकार केवल शासकों के अहं, उनकी कीर्ति, अपकीर्ति, अपने विवरण का मूल विषय नहीं मानता। मार्क्स की इतिहास बोध की अवधारणा का गहरा प्रभाव समकालीन दशाब्दियों में इतिहास के विभिन्न रचना आयामों के देखा जा सकता है। मार्क्स द्वारा उत्पादन प्रक्रिया, उत्पादन सम्बन्धों द्वारा जनित सामूहिक वर्गों में निरन्तर चलने वाले संघर्ष को समाज और संस्कृति के सभी फलको का मूल कारक ठहराया जाना एक लम्बी बहस की शुरुआत थी, जो अभी भी समाप्त नहीं हुई है कि क्या मानव व्यवहार और संस्कृति आर्थिक वर्ग-संघर्ष के प्रतिफलन पूर्णरूप से पूर्व निर्धारित भौतिक और आर्थिक तत्वों के आधार कर्णों पर ही इतिहास वृत्तांत में समाहित किये जाने चाहिए? इस बहस ने कुछ और किया हो न किया हो, समकालीन इतिहास को अपने वृत्तांत में व्यतीत सत्तशाहों की अन्धी राजनीति की जुगाली से तो निश्चय ही उबारा है।

इस नव-इतिहास बोध ने सम-सामयिक राजनीति के भौगोलिक विन्यासों और समीकरणों द्वारा उत्पन्न देशों, जातियों, राष्ट्रीयताओं में परिभाषित ईकाईयों को अपने वृत्तांत का सहज बांधने वाला आकार मानने से इन्कार कर दिया है। इन क्षण-भंगुर राजनीति के बुलबुलों को इतिहासकार अपने वृत्तांत द्वारा चिर-स्थायी सातत्य देने की हिमाकत नहीं करना चाहता। इतिहास के अध्ययन का वास्तविक आधार विषय क्या है? वे सभी उत्तर जैसे प्रचलित चिन्तन में उभरे हैं, पूर्णतया पर्याप्त नहीं लगते। उदाहरणार्थ, क्या इतिहास सत्ता, राज्य, प्रभुता, शासन, जाति, राष्ट्र के विभिन्न काल-खण्डों अथवा संस्कृति और उसके स्वरूप, वर्ग संघर्ष, उत्पादन-साधन और संबन्धों उनके सतत बदलते और विकसित होते विन्यासों और प्रारूपों या इनमें जन्मते, संघर्ष करते, महान चरित्रों जैसे जन-नायक उनकी उपलब्धियों, अन्य संतों, विभूतियों, धर्म गुरुओं, युग-पुरुषों के गौरवपूर्ण निर्देशन की चर्चा, व्याख्या क्यों नाकाफी पाई जायेगी? हम देखेंगे कि इतिहास में जहाँ आक्रामक विजेताओं, महान मसीहाओं, सम्राटों, संतों, जन-नायकों और मानव जाति के उद्धारकों की लम्बी भूमिका पहचानी जानी चाहिए, उनको समझी जाना जरूरी है, वही उनकी चारण सरीखी प्रशस्ति करना त्याज्य होना चाहिए। अब इतिहास के स्वरूप पर यह पुनर्विचार स्पष्ट करता है कि सामान्य जन ही इतिहास के वास्तविक निर्माता की भूमिका निभाते हैं। बिल्कुल गुमनाम और अनजाने। वे, जो हर समय धकियाएँ जाने को मजबूर पीछे भुलाए गए अनगिनती छुटभूथे, कारीगर, किसान, श्रमजीवी, कारकून, लिपिक, घरेलू चक्की में पिसती धरवालियाँ भी इतिहासकार की निगाह से अब सामने आने लगी हैं, इनको अब पूर्णतया भुलाया जाना नामुमकिन हो गया है, यह इतिहासकार को लोकधर्मी तेवर अपनाते को मजबूर करेगी। यथार्थ भोगा जन-जीवन, उसकी बदनसीबी अब तिरस्कृत उपेक्षा द्वारा इतिहास वृत्तांत छोड़ना नहीं चाहता।

प्रायः इतिहासकार अपने वृतांत को रोमांचक नाटकीयता देने का जानबूझकर यत्न करता है। पाठक के कोतूहल और किस्सागोई की भूख को अपनी चर्चा द्वारा पूरा करना चाहता है, उनके मनोरंजन की जुगत और नसीहत की संभावना भी तलाश करता है। यह भी हमें देखना है कि क्या इतिहासकार परावर्ती युग की व्यास पीठ पर बैठकर व्यतीत मानव अनुभूत यथार्थों पर किसी भी प्रकार नैतिकता के फतवे इन्द्राज करके किसी भी सीमा तक मानवधर्म की कोई सेवा या पैगम्बरी कर सकने में समर्थ है? क्या इतिहासकार वास्तव में जो कुछ हुआ था, उससे अन्यथा कुछ भी अपने वृतांत में जोड़ने के लिए युक्तिशः मुक्त है?

इसके साथ ही साथ यह भी विचारणीय है, कि किसी भी व्यतीत कालखण्ड में जो हुआ होगा (?) क्या उसे कोई भी परावर्ती इतिहासकार का वृतांत समेट सकता है? या समेटने में यत्नशील होना चाहिए? इस समस्या को पकड़ भी पाने लिए हमें मानवीय व्यापारों की बहु - आयामी सापेक्ष-पूरकता का कुछ जायजा लेना जरूरी लगता है। किसी भी मानवीय संकल्प, भोगे यथार्थ, सामाजिक घटना, सार्वजनिक तथ्य और उसके औपचारिक निरूपण की विभिन्न परतों को समकालीनों द्वारा भी कहां कभी किस सीमा तक इकसार पाया जाता है? विचारणीय होना चाहिए। इस संदर्भ में प्रथम पुरुषीय वार्ता में लिखे गए संस्मरण, स्मृति चित्र, की तुलना यदि उन्हीं कालखण्डों में प्रचलित लोकचर्चाओं, (अखबार, माध्यम में छपी रिपोर्टों) अथवा प्रशासकीय व्यवस्था (पुलिस, न्यायालय, जन-गणना के दस्तावेज) द्वारा प्रस्तावित अभिलेखों से की जाये तो उनमें कितना पूर्ण-साम्य मिलेगा? यह छानबीन, परीक्षण, पुनर्परीक्षण साक्ष्य युक्तिशः तर्क-वितर्क इन तीनों स्रोतों के ऊपर कर सकने के बाद भी क्या हमें केवल एक मात्र प्रामाणिक वृतांत अभी आज की मानवीय घटित स्थितियों का मिल पाता है? निस्संदेह नहीं।

इससे केवल मात्र यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है, कि इतिहास के वार्ताकार का जहाँ यह प्रारम्भ, मध्य और अन्त तक सहज, सतत् दायित्व ही नहीं बल्कि एक मात्र लक्ष्य और सफल आदर्श है कि वह वस्तुनिष्ठ वृतांत में जो तथ्यशः हुआ था को निरूपित करें, वहीं यह भी दो टूक यथार्थ है, कि इस आदर्श का यान्त्रिक चरितार्थ सम्भव ही नहीं है। क्योंकि प्रथम पुरुषीय अनुभूति तथा उसकी निजी परावर्ती स्मृति जो संस्मरणों में प्रस्तुत होती है, में भारी अन्तर होता है, इनमें कितना सच है, और कितना हमारी आत्म विस्मृतियों, अतिसंरचनाओं कपोल कल्पित आरोपणों, रति, इर्ष्या, विद्वेषों, स्पर्धा, छदम लिप्सा, छिपी चिपकी, यगी घुली, रसी होती है पहचाना जाने लगा है। मनोविश्लेषण ने आज स्पष्ट कर दिया है कि कायाधर्मी मानव के लिए पूर्ण रूप से तटस्थ आत्म जीवनी और आप बीती लिख पाना दुस्साध्य है। हमारे मनो मालिन्य, झूठी आत्मरति, आत्म प्रतिभा की आरती का सम्मोहन सत्यान्वेषण का सदा पीछे ढकेले जाने को हमारी कमजोरी बनाता है। बिरले आत्म साक्षात्कार के क्षण ही हमें स्वयं निजी के झूठे ओढ़े नकाबों और स्वप्नवत् लोरियों से हमारे अहं को यदा-कदा ही मुक्त कर पाते हैं। सामान्यतया, झूठ का मुखौटा हम सभी आकर्षक पाते हैं।

इसीलिए इतिहास जहाँ मानव की मानवीय कमजोरियों का कच्चा चिद्वा लिखता है, स्वयं इतिहासकार की अपनी कितनी अंधी भटकनों और संकीर्ण राग-द्वेषों में रची पगी उसके वृतांत

की खींचतान की अभिव्यक्ति संवेदनशील पाठक को सदैव होती है । यह एक लम्बी खोज, इतिहास उसे शोध के औजारों की जांच और अनेकों प्रयोगों का परिचय और उनके दुरुपयोगों के जायजे स्पष्ट करते हैं। प्रायः निराशा और कटुता की भंगिमा की उपेक्षा करते हुये यह निम्न उक्ति एक सत्य का अनावरण करती पहचानी जानी चाहिए: कि सम्भवतया स्वयं परमात्मा भी मानव जीवन प्रवाह को बदल नहीं सकता, जिसे इतिहासकार अपनी गलत बयानी परावर्ती पीढ़ियों के लिए बदलने में सक्षम है। वृत्तांत की काट-छांट, सम्पादन, अति-रंजना, कतर-बौंत, उपेक्षा, चुप्पी, जोड़ - बाकी, संक्षेपण और अति-विशदीकरण इतिहास के वृत्तांत में भी आते ही हैं उतने ही जितने कि एक अकेले व्यक्ति के आत्मचरित लिखने में वस्तुतः आपबीती से पृथक पाए जाते हैं । इस दृष्टि से परिवार की वंशावली के चारण हों, या मिथक, लोक क थाकार, किवदंतियों के जनक गुमनाम रचनाकार अथवा किसी कालखंड के तटस्थ इतिहासकार यह चयन धर्मी-प्रयोग सभी में उपस्थित दिखेंगे।

फिर भी इतिहासकार यह बात अच्छी तरह जानता है कि जब व्यतीत की धूल पर समय की लम्बी रात गुजर चुकी हो, वह, उन बहुत पहले गढ़े हुए मुर्दों को पुनर्जीवित नहीं कर सकता, और न अपनी कालम की नोक से लिखी निन्दा को अपने वृत्तांत में जोड़कर उन अतीत के कसूरवारों को न कोई प्रताड़ना देकर दण्डित कर सकता है, न मिटा सकता है, और न किसी तरह अनुमोदन, प्रशंसा स्तुति, पूजा द्वारा पुरस्कृत अथवा सम्मानित कर पाता है। जो कुछ भी अतीत अपने आप में था वह अपने युगीन यथार्थ की सारी तेजस्विता खाक और कालस, अच्छाई बुराई के साथ-साथ कभी न लौट सकने वाले कल में स्वयं इतिहासकार के आज' के बहुत पहले समा चुका है। उसे तिरस्कृत करने, नैवेद्य चढ़ाने या उसे अपने सम-सामयिक भावोन्मादों का विषय समझना बौद्धिक स्तर पर उस निम्नतम बौद्धिक तटस्थता और भावात्मक संजीदगी का अभाव प्रदर्शन है, जिसके अनुपस्थित रहने पर व्यक्ति न सुहृद, सहज सामाजिक रसिक, न्यायाधीश, नीतिकार, वैज्ञानिक, कला-पारखी या समीक्षक कुछ भी नहीं बन सकता । मैं ऐसा नहीं मानता, यह सच है, कि इन सभी विशिष्ट मूमिकाओं पर खरा उतरने के बाद ही इतिहासक इन अग्निपरीक्षाओं से गुजर कर अपनी व्यासपीठ पर बैठने का अधिकारी होता है। इतिहासकार मेरे मतानुसार इसके विपरीत, साधारण व्यक्ति के समानही अपने सम-सामयिक राग-द्वेषों, मनायोगों, मानसिक ग्रंथियों और पूर्वाग्रहों के बीच उच्छवासित होता है, और ऐसा जीवन जीते -जीते अपने स्ववरित इतिहास गढ़ने के दायित्व का भी निर्वाह करता है । सम्भवतया, इसीलिए केवल वे इतिहास रचनाएँ रोचक सम्प्रेषण अपने पाठक को देने में प्रायः सफल होती हैं, जो केवल जड़ जैविक, निष्प्राण गतियों, क्रियाओं प्रतिक्रियाओं का मात्र वृत्तांत बन कर न रह जायें । कथा लालित्य भी इस वृत्तांत का एक लाक्षणिक गुण है।

मानवोचित पात्रों की मूर्त्त संकल्पनाएँ, उल्लसित भाव, आत्मानुभूत पीड़ा का पुट, उनकी उद्विग्नताओं और आशंका के खारे आंसू की अद्वितीय अभिव्यक्त नाटकीयता कायिक रूपायण एवं विश्वसनीयता पाठक को आकर्षित करती है। इतिहास वृत्तांत में यह मानवोचित भाव-जगत सतत् प्रतिलक्षित करना इतिहासकार का दायित्व है।

नीचे हमारी चर्चा इतिहास के कलेवर की स्पष्ट व्याख्या देने में संलग्न होगी। इन विविध प्रश्नों का विश्लेषण करने का हमें पर्याप्त अवसर मिलेगा। इनमें स्थित निहितार्थों को भी यथा सम्भव निखारने की कोशिश जरूरी पाई जायेगी। हमारा इतिहास की वार्ता का रेखांकन जहाँ एक ओर तथ्यमूलक सूचना धर्मी विज्ञान से जुड़ा पाया जायेगा, वहीं उसके मानवीय गुणों वाले चेहरे को उसकी संरचनाओं में साहित्य और नाटक का भी समावेश स्पष्ट करेगा। इसी रस्सा कसी के बीच गुजरते-गुजरते इतिहासकार और उसकी कर्त्ता नीति, आदर्श मानवीय मूल्यान्वेषण से भी अपने बहु-पटलीय रिश्ते कैसे जोड़ते हैं, हम जानेंगे। आगे पढ़ें।

3.2 इतिहास क्या है ?

सर्वप्रथम, एक संक्षिप्त स्पष्टीकरण 'इतिहास' पद को लेकर जरूरी है। साधारणतया यह पद परावर्ती लेखक द्वारा अपने अध्ययन के मूर्त आधारों पर किसी काल खण्ड में घटित मानवीय व्यवहार के पुनर्निर्मित-वृत्तांत अथवा आख्यान को इंगित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। तदनुसार स्वयं अतीत में घटित घटनाक्रम को इस पद से अभिव्यक्त अवधारणा के साथ घपलाना नहीं चाहिए। किन्तु प्रायः इस इतिहास पद के प्रयोगों में जरूरी सावधानी न बरते जाने के फलस्वरूप कई अविचारित अनर्थ सामने आते हैं। जैसे, इतिहासकार स्वयं अपने वृत्तांत में चर्चित तथ्यों, घटनाओं, और प्रक्रियाओं के सम्मिलित समूह को इतिहास की दिशा या इतिहास के मूल चालकों अथवा ऐतिहासिक प्रगति, हास, विघटन, आदि प्रत्ययों का अनचीन्हा प्रयोग करता पाया जाता है। इनसे यदि बचा जाए तो 'इतिहास' की सही अवधारणा की सही अभिव्यक्ति मिल सकेगी।

इतिहास की रचना अतीत के कालगर्त में विलीन होने के बाद ही अनिवार्यतया की जाती है। सम-सामयिक मानवीय-व्यापारों, क्रियाओं, सामाजिक संगठन और उसके परिवर्तनों की चर्चा इतिहास नहीं मानी जाती। यह निर्विवाद है। किन्तु ऐसा क्यों होता है? अथवा क्यों समकालीन लेखक अपने समकालीन पात्रों की चर्चा, व्याख्या, विश्लेषण करने से कतराते हैं? संभवतया इसका मूल कारण अपने लेखन को समकालीन राग-द्वेषों, कलह, पक्षधरता और समकालीन समाज के न्यस्त स्वार्थों द्वारा जनित पूर्वाग्रहों और संवेदनशीलताओं से अछूता रखने की इतिहासकार की कामना होती होगी। साथ ही इन क्रिया और प्रतिक्रियाओं से भयभीत इतिहासकार अपनी स्वायत्तता पर आंच आने का खतरा भी मोल नहीं लेना चाहता। इस दृष्टि से सभी पत्रकार भी सम-सामयिकों पर अपने उद्गार निश्चित संयम और सावधानी से ही व्यक्त करते हैं। किन्तु इसके विपरीत दृष्टिकोण से इतिहासकार को समकालीन तथ्यों की परिभाषतया अधिक जानकारी, सुगम, सुलभ और विश्वसनीय विस्तार तक उपलब्ध होगी और इस विपुल साक्ष्य-सामग्री को अपने विषय की सम्भवतया अधिक सुचारू, और प्रामाणिक व्याख्या इतिहासकार की निष्पक्ष एवं अधिकारी लेखनी देगी। तो फिर भी क्यों इतिहास लेखक प्रायः समकालीन घटनाओं, आंदोलनों और तत्कालीन प्रक्रियाओं से अपने वृत्तांत को इतना अछूता रखना चाहता है?

इसका एक सम्भव कारण यह हो सकता है, कि मानवीय और सामूहिक जीवन की क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ प्रायः किसी भी सीमित अवधि में अधूरी और अन्तराल मात्र अपूर्ण बन जाती हैं, उनका पूर्ण अवमूर्तन किसी एक समकालीन पीढ़ी तक ही सीमित नहीं होता, वृत्तांत की समग्रता और उसकी विश्वसनीयता को पाने के लिए उक्त घटनाक्रम के सभी सम्भव प्रभावों के सहजन प्रगटन के पहले उनके अध्ययन में पहले किसी इतिहासकार के मन्तव्यों के सफल करने के स्थान पर उसे केवल पत्रकार, किस्सागो या राजनीति से ओत-प्रोत होने की आलोचना से भयभीत करेगा ।

इस युक्ति को ध्यान में रखते हुए दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए । पहली कि इतिहासकार अपनी चर्चित कालखण्ड की लक्ष्मण-रेखा किसी पूर्व निर्धारित परिभाषा द्वारा स्थिर नहीं कर सकता । इसके कालखण्ड के निर्धारण तदर्थ प्रक्रियाओं, अवधियों, साक्ष्यों और उन प्रक्रियाओं के समस्त प्रभावों के सर्वेक्षण ही बना पायेंगे । यही बात इतिहास के क्षेत्र और देश के निर्धारण पर भी लागू है । इतिहासकार अपने विशेष विषय के अध्ययन के लिए अपनी स्पष्ट इकाई का मुक्त स्थापन जरूरी पायेगा । उदाहरणार्थ, यदि हम कृषि के विकास का किसी युग में अध्ययन कर रहे हैं, तो वह विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं अथवा जाति विशेष के प्रभाव प्रसार क्षेत्र से पहले से ही न तो बंधी होती है, न बांधी जानी चाहिए । यह जरूरी नहीं है, कि जो भी देशीय सीमाएँ हम उपर्युक्त प्रक्रिया के लिए निर्धारित करें वह ही किसी दूसरी मानवीय प्रक्रिया जैसे 'धर्म' या कला' के वृत्तांत या चित्रण के लिए भी समीचीन पाई जाये । इतिहासकार अपने हर वृत्तांत को केवल मात्र राजनीतिक वार्ता और उसके वृत्तांत का अनुदास नहीं बना सकता । यह भी एक दूसरा विचार-णयि मुद्दा है कि क्या राज्य, राष्ट्र, क्षेत्र, प्रदेश के अपने समकालीन युग के विभाजकों से बांधकर ही इतिहासकार अपनी परिवर्तनशील इकाई को खूंटे से बांधकर अपना वृत्तांत विकसित करें ? यह तो सहज स्पष्ट ही पहचाना जा सकता है कि स्वयं राजनीति का इतिहास भी सम-सामयिक भारत में नेपाल, बांगलादेश, अफगानिस्तान, मन्त्रमार, श्रीलंका, या पाकिस्तान, तिब्बत, भूटान में विभाजित करके सफलता से नहीं लिखा जा सकता । सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया में पिछले सौ वर्षों में कई राजनीतिक रद्दोबदल के बावजूद, आज के स्वयं न प्रभुसत्ताशील राज्यों के अवतरण के बाद भी, इस क्षेत्र में यूरोप और मध्य-एशिया के सार्थक हस्तक्षेप (आक्रमण, वाणिज्य, उपनिवेशवाद) की भूमिका सदा प्रमुख स्थान रखेगी । इस वृत्तांत में इन सुदूर प्रदेशों का अध्ययन भारतीय इतिहास वार्ता का भाग होगा ।

3.2.1 इतिहास के स्रोत और साधन

इस चर्चा के लिए इतिहास के स्रोतों, साधनों और औजारों की परिभाषा या पहचान मुफीद पाई जायेगी । यह हम एक पूर्व-माण्यता ठहरा कर चर्चा कर रहे हैं कि इतिहास का वृत्तांत कभी भी व्यतीत युग पूरी पुनर्चना न कर सकने में दिलचस्पी रखता है, और न ऐसा करना सम्भव है । इतिहासकार प्रकृति अथवा यांत्रिकी के परिवर्तनों तक की भूमिका उन परिवर्तनों के मानवीय संकल्प और व्यवहार समाज उसकी विधि, चिन्तन और संस्कृति विभिन्न फलकीय संरचनाओं की निर्मित को समझने के लिए

करता है । ऐसे संश्लिष्ट अन्तर व्यापारों का स्पष्टीकरण इतिहास के औतुस्कय की सीमा है । उन सभी तथ्यों की जानकारी एवं अधिकारी संकलन प्राप्त करना जिनसे बाह्य वस्तुगत, भौतिक वस्तुओं, शिल्प उत्पादित सामग्री, (सिक्के, कलाकृतियों, औजार या इनको बनाने ढालने वाले विन्यास) नागर प्रासाद, अवशेष 'साक्ष्यों' के मूर्त स्वरूप इतिहासक के लिए प्रारम्भिक स्रोत है । पुरातत्व की रिपोर्ताज़, कालगणना के विभिन्न तकनीकी आकड़े इतिहास वृत्तांत के स्रोत और उक्त वृत्तांत का सुनिश्चित चौखट इतिहास को देते हैं । स्वयं व्यतीत युग की सामाजिक संरचनाओं द्वारा कितने ही अति सम्पादित और स्फुट अभिलेख इतिहास के स्रोत बनते हैं । यह कई वर्गों के पहचाने जाने चाहिए: (1) प्रशासकीय आदेश, राजनीतिक उद्घोष, सरकारी दफ्तरों में एकत्रित सूचनाएँ, इन्दराज, अभिलेख, सन्धिपत्र आदि । (2) शिलालेख, सरक सनदें, विभिन्न राजकीय प्रशासनों को संचालित करने के लिए स्थायी नियमावतियाँ एवं उन नियमों को क्रियान्वयन में उतारने वाले प्रशासनिक निर्णयों और आदेशों के विभिन्न अभिलेख (3) व्यक्ति, परिवार एवं संस्थाओं की निजी सनदें, राजाज्ञाएं, संस्मरण, सम्पदा और वाणिज्य के ब्यौरे, आदि ।

स्पष्ट ही, इतिहासकार की अपनी वृत्तांत रचना प्रक्रिया पुरातत्व विद्या द्वारा मूल प्रस्तावित मूल चौखटे (प्रदेश और काल निर्धारण) पर अपना कथानक गढ़ने के लिए उपर्युक्त प्रशासकीय, औपचारिक एवं गैर प्रशासकीय स्रोतों से सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री का संकलन, सम्पादन (चयन और पुनर्गठन) विवेचन द्वारा सतत् सुलभ एकीकरण करने से प्रारम्भ होती है । इस कच्चे कथानक को शनैः शनैः एक लम्बी शोध यात्रा से गुज़रना होता है, इसमें अनेकों संशोधन, परिवर्धन और विशदीकरण अनिवार्यतया आते हैं । यह सारी प्रक्रिया सतत् चलती है, अभिनूतन साक्ष्यों और खोजों के द्वारा इसे बदलने में इतिहासकार कोई अनावश्यक हठ नहीं दिखलाता । इस स्तर पर उसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक अन्वेषक का समान धर्मी ही होना चाहिए, जो अपने सभी मतों को केवल साक्ष्यों को सर्वाधिक सुपट्ट एवं समन्वय दे सकने वाले सिद्धान्त के पक्ष में अपनी सभी स्थित पूर्व संज्ञान की संरचना को छोड़ देने में किसी भी प्रकार का मोह अथवा क्लेश अनुभव नहीं करता । इस प्रकार इतिहास वृत्तांत भी सतत् शोध, नवखोज, चर्चा, समीक्षा और साक्ष्यों की सतत् संशोधित वृत्तांत से तुलना से युक्तिसंगतता की और आमुख होता है । इन दावों और प्रतिदावों का इतिहास के वृत्तांत में सदा स्वागत होना चाहिए, यौक्तिक प्रयोग और साक्ष्यों के सुचारु प्रयोग किसी भी मतांधता का खण्डन आसानी से कर सकते हैं । यह इतिहासकार की सतत् तलाश है कि छिपे मुंदे युगों के उत्तरोत्तर नए साक्ष्य खोजे जाएँ और इस प्रकार श्रम-साध्य अनुसंधान कर्त्ताओं द्वारा एकत्रित नव-साक्ष्यों की पूर्ववर्ती कथानक के स्वरूप का सत्यापन, पुनर्पुष्टि अथवा संशोधन, परिवर्धन वस्तुनिष्ठ व्याख्या और इन नव साक्ष्यों के निहितार्थों के संतुलित विश्लेषण द्वारा तटस्थ वृत्ति से किया जाए । यहाँ किसी भी इतिहासकार को अपने निजी दृष्टिकोण अथवा प्रश्रय को इस प्रारीच्याक तथ्य आधार पर खड़े होने के फलस्वरूप इतिहास वृत्तांत में रुचि सापेक्ष बनाने की कोई भी अनुभूति नहीं दी जा सकती । यहाँ अति अनुशासित और वस्तुनिष्ठ उपादानों की सर्वोच्चता इतिहासकार की विधि

और समाजविज्ञान की विधि में समानधर्मी होती है, निस्संदेह । इस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए जहाँ यह बात जोर देकर फिर कही जा रही है कि इतिहासकार अपनी तथ्यगत सामग्री के एकत्रण, विवेचन और व्याख्या में कई स्तरों पर विभिन्न विज्ञानों की सुविधाओं, साधनों और सार्वभौम संरचनाओं, तकनीकों को उपयोगी पाता है, (जैसे रेडियो कार्बन काल गणना, सांख्यिकीय आंकलन, आनुवंशिकीय नियम, वंशावली वृक्ष-शास्त्र, इतिहासकार के साक्ष्यों की समीक्षा और निहितार्थों का स्पष्ट अवलोकन देने में प्रयोग किए जाते हैं) सतत् उनके प्रयोगों द्वारा अपनी खोज को अधिक प्रामाणिक बनाने को उत्सुक रहता है । वह अपने वृत्तांत को सामान्य विज्ञान की मूल प्रवृत्ति सामान्यवर्गीकृत कारकों, चरों और उनको अनुबंधित करने योग्य संकल्पनाओं की रचना से सदा दूर रखता है, और उसे ऐसे पुष्टिकरणों और खण्डनों की प्रायोगिक विधि पर कार्य करना असम्भव है ।

इतिहास वृत्तांत सदा ही एक विशेष युग, चरित्र, संकल्प, घटना के अति वैशिष्ट्य मूलक व्यवहार अथवा संरचना राज्य और संस्कृति की विशिष्ट स्थिति का सम्भवतया सर्वथा मौलिक और पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराना अपना तक्ष्य मानता है, वह केवल मात्र उनमें उपस्थित नियम सामान्य सत्त्यों अथवा आदर्श की अभिव्यक्ति से कहीं अधिक मूर्तता प्राप्त कराने का लक्ष्य साधता है । इसके अलावा दूसरी बात इतिहासकार चूंकि मानव संकल्प की स्वायत्ता की पूर्व मान्यता को स्वीकार करता है, और अपने विषय को इस स्वायत्त संकल्प द्वारा जनित कार्यों तक ही सीमित रखता है, इतिहासकार के बौद्धिक विश्लेषण किन्हीं पूर्वाभासों (जैसे: प्रायः प्राकृतिक और जैविक विज्ञानों द्वारा हमें बाह्य जगत के संबंध में सहज उपलब्ध होते हैं) को कभी उपलब्ध नहीं कराता, न कराना चाहता है । तीसरा इतिहास का वृत्तांत नियामक कारकों के आधार पर किसी भी प्रायोगिक विधि को अपने अध्ययन में समाहित नहीं करना चाहता । इन तीन युक्तियों के स्वरूप को समझ सकने से इतिहास के साधनों की विशेष वृत्ति का स्पष्ट निरूपण प्राप्त होगा, ऐसा यहाँ जोर देकर कहा जा रहा है । यह स्पष्ट ही है कि इतिहास, समाज विज्ञान की अपरिपक्व प्रारम्भिक अवस्था न होकर कल्पना-धर्मी आख्यानात्मक संरचना है।

इतिहास का वृत्तांत हमने ऊपर स्पष्ट किया है, कि केवल वर्णहीन खाका या ढांचा नहीं है, चाहे वह कितना ही व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए उपयोगी क्यों न हो । कोई एकसरे के चित्रों या ब्लू प्रिंटों का कला दीर्घा में अभी टांगने की सिफारिश नहीं करता । वहाँ व्यक्ति के चित्र या दृश्य चाहे किसी भी अमूर्त शैली में बनाए गये हों ही स्वागत पा सकते हैं । इसी प्रकार इतिहास वृत्तांत में सामान्य सार्वजनिक अवधारणाएँ केवल पूर्व सुनिश्चित विषय को अभिव्यक्त करने में साधन बनने के लिए ही प्रयोग की जा सकती है, स्वयं उन मूल चरित्रों, संकल्पों, घटनाओं और निर्णयों को अपदस्थ करने के लिए इनका आश्रय लेना इतिहास वृत्तांत के स्वरूप से विश्वासघात ही माना जायेगा ।

यहाँ साधनों की चर्चा करते हुए हमें दो संक्षिप्त कथन लोक गाथाओं, जनश्रुति, किंवदंतियों और मौखिक सामूहिक स्मृति की लोक प्रचलित परम्पराओं का इतिहास में वैध समावेश के बारे में करना जरूरी लगता है । साधारणतया इतिहासकार अपने साधन परीक्षणों को

यूरोपीय इतिहास के रूढ़िबद्ध पैमानों तक सीमित रखने के फलस्वरूप ऐशियाई मौखिक परम्पराओं का कोई सुपट्ट प्रयोग इतिहास वृत्तांत को मानवीय अनुभूतियों के निकट लाने में अभी तक नहीं कर सके हैं। प्रायः यह शिकायत पाश्चात्य इतिहासकारों और उनकी वार्त्ता के प्रारूप के आधार पर पौराणिक विशेषतया भारतीय मनीषा के अनैतिहासिक स्वर और मिथकों में गढ़े जाने की जाती है, क्योंकि हमारी सांस्कृतिक परम्परा में वस्तुनिष्ठ घटनाक्रम, तिथि, ब्यौरेवार दो दूक अभिलेखों को क्रमबद्ध रूप में नहीं रखे गये, प्रायः मिथक, गाथा किंवदन्ति और लोक स्मृति इन्हें आपस में घुलामिलाकर अपने चैतन्य में सर्वकालिक अहसास का सामाजिक यथार्थ तक बना डालती है। यही कारण है कि रामायण और महाभारत इतिहास की पोथी न होकर सामूहिक भारतीय चित्त की धरोहर तक बनते जा रहे हैं। एक दूसरी संक्षिप्त टिप्पणी इसी बात पर सामान्य इतिहास वार्त्ता के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए जरूरी लगती है, कि जिस इतिहास वृत्तांत की चर्चा हम वांछनीय मानते हैं, क्या वह कर्त्ता, भोक्ता के परिप्रेक्ष्य से पूरी तरह काटी जाकर केवल शुद्ध तृतीय पुरुषीय वार्त्ता जिसे तथ्यात्मक रिपोर्टाज की निर्व्यक्तिक दृष्टि कही जाए में सर्वथा सफल होगी? यह वृत्ति मनोचिकित्सक की अपनी रोगी के उपचार में या, न्यायालय में किसी अभियोग में उठाए गए मुद्दों का छान-बीन, बहस और आदेशों के लिए सम्भवतया स्वाभाविक एवं सहज ही उचित हो सकती है, किन्तु इतिहास वृत्तांत इस प्रकार दृश्य और बाह्य विवरण से अपने अतीत के सार्थक संवाद के लक्ष्य तक पहुंच पाने में बहुत पीछे छूट जायेगा। नीचे हम कुछ गहराई तक जाकर इतिहास की वार्त्ता और इतिहास में कर्त्ता के संवाद के स्वरूप को सही तरीके से समझने का प्रयास करेंगे।

3.2.2 इतिहास वार्त्ता में व्यक्तित्व का सवाल

इतिहास वार्त्ता की इस चर्चा को सुनिश्चित करने के लिए यह अत्यंत जरूरी है कि इसके मानक स्वरूप के निरूपण में मानव कर्त्ता, दृष्टा भोक्ता के त्रिपाक्षिक स्वरूप को पूर्ण पूरकता से अपनाएं और इतिहासकर्मी को सतही रिपोर्टाज की खानापूरी को इतिहास का पर्याप्त न ठहरा देने की त्रुटि करें। इतिहासकार परावर्ती युग की न्यायपीठ पर अधिष्ठित न्यायपति, धर्माचार्य, शासक अथवा जननायक नहीं होता, जो अपने सम्मुख प्रस्तुत विषय से संबंधित पात्रों को किन्हीं अपनी सहज पूर्व-उपलब्ध मूल्य दृष्टियों से तौले और आंके। न वह उन पात्रों की व्यतीत जीवन धारा को अपनी कल्पना संसार में दुबारा जीने का यत्न कर सकता है, नहीं कोई विशेष परामर्श किसी वांछित दिशाबोध द्वारा कुछ अधिक अर्थपूर्ण और सफल जीवन जीने के लिए कोई व्यावहारिक मार्ग-दर्शन कर सकता है। इतिहासकार का वार्त्तालाप यदि किसी ऐतिहासिक पात्र के साथ होता भी है तो वह मात्र परोक्ष और तृतीय पुरुष की वार्त्ता में ही चिन्त्य है। वैसा संवाद जिसे हम अपने समकालीनों के साथ करते हैं, इतिहासकार अपने पात्रों के साथ करने की किसी भी स्थिति में नहीं होता। किन्तु इतिहासकार अपने पात्रों के साथ करने की किसी भी स्थिति में नहीं होता। किन्तु इतिहासकार समय की दूरी युगीन अन्तरालों की विभाजन सीमाओं के रहते हुए भी तृतीय पुरुषीय वस्तुनिष्ठ तेवर की श्रेष्ठता को मानकर सावधान शब्दावली के ही प्रयोग करने की सिफरिश करेगा। किन्तु

उसका विश्लेषण निष्प्राण तत्त्वों, स्थितियों, प्रक्रियाओं और संवेदन शून्य आरोपणों, संस्थागत व्यवस्थाओं और अनगिनती नियमावलियों और उनके द्वारा सिद्ध निर्देशों और उनके पालन दृष्टांतों के विराट जमघटों मात्र को संकलित कर देने को मात्र इतिहास वृत्तांत का कच्चा माल बनाने लायक घटनाचक्र, रोजनामचा, ही मानेगा । इतिहास वृत्तांत को ऐसी संवेदन शून्य तटस्थ घटनाक्रम की फेहरिशतों से सदा अलग करना जरूरी है । इतिहास चाहे वह किसी विशेष व्यक्ति का हो, कार्य का हो, अनुभव की व्याख्या या किसी परिस्थिति का विश्लेषण, किसी सम्पूर्ण युगबोध की चर्चा इसकी भौतिक विशिष्ट वैयक्तिकता को हमें ध्यान से अनावरण करना पड़ेगा । यह विशिष्ट इकाई किसी अमूर्त चर, शक्ति, प्रवृत्ति, अथवा विस्थापित निर्व्यक्तिक 'भावनाओं' अथवा दृष्टिकोणों' द्वारा परिभाषित नहीं की जा सकती । न की जानी चाहिए । 'दृष्टि' 'भावनाएं', विचारधाराएं' सदैव ऐतिहासिक मूर्त व्यक्तियों के गुण हैं, जिन्हें किसी भी प्रकार वायवी एवं आधारच्युत अमूर्तताओं द्वारा अपदस्थ करने का प्रयास करना । इतिहास वृत्तांतविधि के साथ नाजायज छेड़खानी भर होगी । इतिहास वृत्तांत प्रारम्भ, मध्य और अन्त तक केवल मात्र विशिष्ट व्यक्ति को ही पुरस्कृत करता है । सारी विचार धाराएं संस्थाएं, भावनाएं, लक्ष्य, प्रतिक्रियाएं, मन्तव्य, दायित्व, भी प्रायः व्यक्ति का प्रतिबिम्ब मात्र है, या अनुगूँज द्वारा सुनिश्चित होती है, और स्वयं व्यक्तित्व की अस्मिता इन दुहरी तिहरी अनगुंजों द्वारा ही गढ़ी जाती है, जो भी हो इतिहास वृत्तांत इस विस्तृत अर्थ में 'व्यक्तित्व' का विश्वसनीय एवं विशिष्टतम रेखांकन है ।

3.2.3 इतिहास और नियतिवाद :

उपर्युक्त विश्लेषण में दो दूक व्यक्तित्व की सिफारिश यह सम्भव निहितार्थ प्रस्तुत कर सकती है, कि इतिहास के वृत्तांत में विचार धारा', जीवन दृष्टि', और 'आर्थिक व्यवस्था' या सामाजिक संस्थागत संगठन' तथा उनमें उपस्थित प्रवृत्तियाँ शक्तियाँ या आदर्श एवं लक्ष्यों की दिशाओं को अध्ययन या विश्लेषण करना इतिहास का प्राथमिक दायित्व नहीं है, चूंकि इतिहास विशिष्टताओं और सम्भवतया मानव के अराजक कृति को केन्द्र करके गढ़ा जाता है, जिसमें निम्न अमूर्तकारकों जैसे वर्ग-संघर्ष, उत्पादन शक्तियां और संबंध, सामूहिक चेतना और राष्ट्रवाद इत्यादि केवल अमूर्त व्यवस्थाओं के आरोपण में और व्याख्या द्वारा वार्ता में जोड़े जाते हैं, वे केवल मूर्त सदस्यों को युक्तिसंगत तन्त्र में ढालने के बौद्धिक सोपान या योजनाएं ही ठहराई जानी चाहिए । किन्तु इस प्रकार की आरोपित अवधारणाओं (चर, शक्ति, प्रवृत्ति) को इतिहास के मूलवृत्तांत का प्राथमिक विषय समझना एक यौक्तिक विसंगति होगी, और आपत्तिजनक अमूर्तिकरण भी । यहां इस प्रश्न की कुछ विस्तार से परीक्षा वांछनीय है । पहली बात यह है, कि शक्ति और विशिष्ट' को समानार्थक नहीं माना जा सकता । सभी विशिष्ट घटनाक्रमों और मानव व्यवहार में एक विलक्षणता सतत् विद्यमान होती है, जो उसे किसी भी सामान्य सतहें सामान्यीकरणों में पचाए जाने का पूरी तरह

अवरोध करती है, इतिहास वृत्तांत इस विशिष्ट तत्व का संवेदनशील निरूपण भी करना जरूरी मानता है, जितना उक्त विशिष्ट चरितार्थन में भी सामान्य अवधारणाओं का प्रतिपादन । यह विचारणीय है कि इतिहास का वृत्तांत मानव व्यवहार के रूपायन और अवमूर्तन के स्वरूप का वस्तुनिष्ठ क्रम अनावृत करने में तत्पर होता है, इस दायित्व के चरितार्थन में भी हमें सामान्य अवधारणाओं की सार्वजनिकता का सहारा लेना पड़ता है, किन्तु इस चरितार्थन को पूर्वविचरित सामान्य नियम का दृष्टांत हम कभी भी नहीं ठहराना चाहेंगे ।

इतिहास व्याख्या मानव अस्तित्व को मूलतया नियतिवाद से ऊपर समझती है, प्रत्येक मानव सहज रूप से अपनी संकल्प शक्ति में मुक्त और अबाधित पाया जाता है, यह इतिहासकार का स्पष्ट मानव व्यवहार के प्रति दृष्टिकोण होता है । जिसके विपरीत प्रायः सामाजिक विश्लेषण सतत् सामाजिक वर्गीय गुणों और उनके सार्वभौम समीकरणों की उत्पत्ति में अपनी खोज चलाते हैं, पिछली कुछ पीढ़ियों द्वारा समाज के अध्ययन को विज्ञान विधि, गणितीय सांख्यिकी और हाल में आंकलन के नए संयंत्रों के अत्यंत प्रभावशाली पहलों के साथ आमूलचूल प्रकृति और भौतिक विज्ञानों के समकक्ष ही ठहराया जाने लगा है । यह तथ्य है, कि किसी भी प्रकृति की संरचना की पूर्ण निर्मित के उपस्थित प्रारूप भी व्यवस्थित एवं विश्वसनीय सफल भविष्योक्ति किसी भी आगामी घटना के बारे में अभी तक पूर्णतया प्रमाणिक स्तर पर कर सकने में काफी पीछे हैं । किन्तु हमारी वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक क्षमता के लिए जरूरी मोटे नियंत्रणशील निर्णय इस सूक्ष्म स्तर की विस्तृत क्षमता के अभाव में भी व्यवहारिक जीवन के लिए उपयोगी पाए जाते हैं । यदि इतिहास वृत्तांत मानव व्यवहार के लिए इस प्रकार के सीमित पूर्वकथन न भी कर पाए तो भी इतिहास का ज्ञान अवैज्ञानिक नहीं आंका जाना चाहिए । किन्तु इसके अतिरिक्त क्या ऐतिहासिक संज्ञान समाज विज्ञान के मूल प्रारूप से समरूप है ? इतिहासकार विशिष्ट ऐकिक की समग्र घटना, तथ्य और संरचना को अपनी विलक्षणता की पूर्णता में किस सीमा तक प्रभावी एवं विश्वसनीय प्रस्तुति दे पाता है, उक्त इतिहासकार को रचना के अवमूल्यन का एक मात्र स्वीकृत मानदण्ड है । यह हमारा निष्कर्ष है कि, इतिहास एक मानवीय पात्रों की सहज कल्पनाशील प्रस्तुति मात्र है, उसे विज्ञान की तटस्थ तृतीय पुरुषीय संकलित नियमशीलताओं और संवेदन शून्य शल्य-क्रिया से सदा पृथक समझा जाना चाहिए । उसे स्वयं अतीत के पात्र की निजता के बोध और अद्वितीय संकल्प विकल्प को भी अपने पाठक तक सम्प्रेषण करने का जटिल दायित्व निभाना जरूरी पाया जाता है । यह मानसिक व्यवहार चित्त की आन्तरिक प्रतीतियाँ भी मूर्त्त बाह्य साक्ष्यों के आधारों पर इतिहासकार प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है, उस युग, वर्ग, व्यक्ति की पूरी संचेतना को मूर्त्त करना भी उसकी जिम्मेदारी है । स्पष्ट ही इतिहासकार यह दायित्व केवल साक्ष्यों और इनकी यौक्तिक कतर बातों से पूरा नहीं कर सकता । वह ऐसा करके केवल इतिहास वृत्तांत का अत्यधिक उथला एवं असंतुलित प्रत्यय ही रच सकेगा । अतीत के संकल्प आकांक्षाओं, क्षोभ, उल्लास, क्रियाओं, विभीषिकाओं और बोध जैसी अमूर्त्त मानवीय मानसिक वैयक्तिक वृत्तियों को इतिहासकार पुनर्जीवन देकर अपने क कथानक में जोड़ने में सतत् दत्तचित्त होगा ।

3.2.3.1 इतिहास वृत्तांत और इतिहासकार की परिकल्पनाएं :

हम ऊपर देख चुके हैं, कि इतिहासकार का प्राथमिक दायित्व यथार्थ एवं मूर्त स्तर पर अपने सम्बद्ध विषय के विहंगम साक्ष्यों, पाठ्य सामग्री, सिक्के, भग्नावशेषों की पुरातत्व की रपटें, अभिलेख, आलेख, सरकारी दस्तावेज़ नियमावलियों, कलाकृतियों, औजारों की वीथियों का जायजा और अन्य संस्मरणों को एक जुट करके इस पूर्ण मसविदे का सरलतम, संगत और परस्पर युक्तिशील अभिव्यक्ति गढ़ना माना जाता है। स्वयं इतिहासकार इन मूर्त एवं शाब्दिक साक्ष्यों को परस्पर समन्वित करके अपनी प्रस्तुति को नियोजित करता है, इन्हें तालमेल देता है, और ऐसे बोधगम्य कथ्य को जो वास्तव में अतीत में घटा था' का दावा करके अपना वृत्तांत अराने सम सामयिकों के लिए प्रतिपादित कर देता है। इस प्रकार उसकी शैली एक निरीक्षक लेखागार के परीक्षक और तथ्यान्वेषक (भूत के पर्यपेक्षक) से आगे नहीं बढ़ पाती। क्या वह वहीं रूक भी जाती है? एक विशिष्ट जर्मन इतिहासकार (लियोपालु फान राके) इस तथ्यान्वेषण विधि के चरम सिरमौर प्रतिनिधि थे। उनके अनुसार किसी भी प्रकार का भावनात्मक लगाव, विषयासक्ति, आक्रोश, वैमनस्य, उहापोह, अनुराग विराग, सम्मोहन इतिहासकार के कार्य को क्षीण ही करेगा। निःसंदेह राके के आदर्श को इतिहास वृत्तांत अलिप्त एवं तटस्थ विवेचन द्वारा कथ्य की रचना करें, यह उसकी पहली जरूरत है, सभी मानेंगे। किन्तु क्या इतना मात्र कर चुकने के बाद (पुरानी साक्ष्यों की उपलब्ध पुनर्चनओं के नवीन साक्ष्यों के साथ तालमेल) इतिहासकार का दायित्व पूरा हो जाता है? इस प्रश्न पर चर्चा करना कि इतिहास क्या है? जानने के लिए यह जरूरी है कि हम सम-सामयिक इतिहास विदों ने जो उत्तर इन सम्बन्ध प्रश्नों पर पिछली पीढ़ियों में दिए हैं कि क्या' अतीत में हुआ? कैसे हुआ? क्यों हुआ? को स्वयं इतिहासकार की सम-सामयिक चेतना-बिन्दु के द्वारा उठाए गए प्रश्नों को पृष्ठभूमि में ही गत जीवन के अवशेषों के साक्ष्यों, पाठ्य-सामग्री की समीक्षा, व्याख्या, पुनर्चना के बाद प्रतिपादन प्रस्तुत करते हैं। जानें। अपने आप में यह सामग्री मूक निर्वाक होती है। निरी राशि। इसमें प्राण-प्रतिष्ठा स्वयं इतिहासकार की सोच इन्हें कांट, छांट, तोड़-मरोड़, और बहु-आयामी अवगुणों द्वारा एक योजना और आकार-बद्ध जीवनवृत्त में अवतरित करती है। यह पुनर्चना कितनी कल्पनाजन्य है, और कितनी मूल देश-काल में स्थित वास्तविक घटना चक्र का प्रतिबिम्ब, अभी भी विवादास्पद विषय है। यह एक सतत् संवाद है जो इतिहासकार के मानस और अब अनुपस्थित अतीत के कार्यों के बीच चलता है, पहचाना जाना चाहिए। यह निर्विवाद ऐतिहासिक संकल्पना का सार्वभौम स्वरूप है। इतिहास वृत्त के रचयिता की सक्रिय रचनाशील भूमिका को यह तथ्य बलपूर्वक रेखांकित करता है।

इन साक्ष्यों, तथ्यों, घटनाओं रोजनामचों के इन्द्राज और उनके चयन, सूचीकरण, पुनर्कथनों को क्या इतिहास वृत्तांत नहीं माना जा सकता? यह इस वृत्तांत तक प्रथम चरण में

ठहरेगा, इनका कौशलपूर्ण सम्पादन, समन्वय, वृत्तांत की बुनावट का प्रारम्भ है, समापन या लक्ष्य नहीं, कभी नहीं । विख्यात इतिहासवेत्ता एवं चिन्तक प्रोफेसर कालिंगवुड ने अपनी बहुचर्चित रचना 'इतिहास की अवधारणा' में इस वर्ग के इतिहासकारों को केवल कैंची और गोंद के विशेषज्ञ ठहराकर उनकी भर्त्सना की है । उनके मतानुसार इसके विपरीत सही इतिहास वृत्तांत सशक्त संवाद की शनैः शनैः परिणति है जिसे सम-सामयिक इतिहासकार अपने सम्पूर्ण संयम द्वारा स्वयं की चेतना और बोध में उपलब्ध साक्ष्यों के पुनर्गठन करते करते अनुपस्थित अतीत के मानवकर्मों की आन्तरिक मानसिकता, उद्वग्निता, आकांक्षा, दृष्टि, संकल्प, हर्षोल्लास, अपेक्षाओं, और अन्य भावों का पुनरुद्धार अपने वृत्तांत द्वारा अभिव्यक्त कर सकने में सफल होता है । यह काल के सभी अन्तरालों पर विजयी संवाद संस्कृतियों के परस्पर भेदों, कालखण्डों के विभाजनों, युगीन सापेक्षताओं और विभिन्न परस्पर प्रतिस्पर्धी जूझती आस्थाओं के कोलाहल से जितना सिक्त होगा, उतना ही निर्लिप्त भी ।

इस दृष्टि से वह इतिहास वृत्तांत श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता जिसमें इतिहास का बनाने वाला अनुपस्थित कर दिया जाये । केवल मात्र तृतीय पुरुष की वार्ता के अचेतन कारकों अथवा पदार्थ मूलक चरों को ही समाहित किया जाये । बल्कि वह वृत्तांत जिसमें इतिहास के निर्माता अपनी वांछनीय आत्मानुभूतियों, दावेदारियों, प्रवृत्तियों, आकांक्षाओं और पूर्वाग्रही आस्थाओं का स्पष्ट चेतन आभास रखते हुए भी अनुपस्थित दूसरे आदमी (विषय) की अन्यथा युगीन बोध, मनोवृत्ति, राजनीतिक प्रतिबद्धता, संकल्प विमर्ष और उसकी भीतरी सोच आदि को गढ़ने में आज का इतिहासकार दत्तचित्त होता है, और कभी-कभी इस मार्मिक काल्पनिक संवाद के माध्यम से अतीत की व्यतीत गति को अपने आज के रचित वृत्तांत में पुनर्जीवित करने में सफल होता है । इसी दृष्टि को ऐतिहासिक आदर्शवाद अथवा मन तत्व निरूपणवाद भी कहा जा सकता है । यह परम्परा इतिहास की सम-सामयिक सापेक्षतावादी दृष्टि है, जिसे विख्यात वेनिदित्तों क्रोचे ने इतिहास पर अपने कालजयीचिन्तन द्वारा निम्न सूत्र द्वारा अभिव्यक्त किया था : "कि सारा इतिहास सम-सामयिक इतिहास होता है" । इतिहासकार यथा-शक्ति अपने निजी आवेगों, रुचियों, ओर भावनाओं पर संयम एवं अंकुश रखने में यत्नशील होगा, परन्तु फिर भी अपनी प्रतीतियों और जागतिक आरोपित संस्कारों की पूर्वमान्यताओं का अनजाने में अपने अध्ययन विषय पर आरोपण करेगा, इस आरोपण से बंधा होने मात्र के होते हुए भी, इतिहासकार का यह दायित्व है कि जो उसे अपने विभाजित, संपूर्ण खण्डित और बिखरे साक्ष्यों को अपनी कल्पना द्वारा अतीत के पात्रों और उनकी अन्तरंग मानसिकता ऊपर चर्चित काल्पनिक संवाद के सेतू द्वारा बांधे ।

इतिहास वृत्तांत इस प्रकार स्वयं के सम-सामयिक बोध द्वारा ही व्यतीत युगों के इतिहास की पुनर्चना करता है । इन नए वृत्तांतों में नवीन इतिहासकार के नूतनबोध के फल-स्वरूप प्राचीन युग को सांस्कृतिक एवं सामाजिक घटनाओं में नए मानदण्डों वाली वार्ता के प्रयोग से नए पहलू निखारे जाते हैं । इसका एक समुचित दृष्टांत सम-सामयिक इतिहासकारों में नवीन लोकधर्मों दृष्टि के अपनाने के फल-स्वरूप भारतीय जीवन के उषाकाल से ही उसके विकस में अब खेतिहर मजदूरों, श्रमिकों, शिल्पियों, नारी, शूद्रों और कबीलों की जीवन शैली,

वृत्त एवं दाय पर अधिक बल दिये जाने में पाया जा सकता है, तथा-कथित नैतिक आदर्श, सवर्ण बोध, वर्ण-व्यवस्था, कर्मवाद, पुरुषार्थ आदि की सवर्ण मानसिकता पर केन्द्रित व्याख्याओं को मूर्त भारतीय समाज और उससे सम्बद्ध वार्ता में निष्फल एवं निरर्थक तक ठहराया जाने लगा है। एक दूसरे ऐसे ही सम-सामयिक बोध द्वारा इतिहास की व्याख्या के लिए निर्धारक परिकल्पना उत्पन्न करने का उदाहरण हम कबीली संवेदना, दृष्टि और सामाजिक मूल्यों की भूमिका को एक बार फिर अतीत और समकालीन जगत को समझ सकने योग्य दृष्टि गढ़ने का अपरिहार्य साधन स्वीकृत किए जाने में पाते हैं। इस नवीन दृष्टि का वास्तविक पूर्ण पुनरुज्जीवन पिछली पीढ़ियों पर हावी मार्क्सवादी मूल्य-पर्यप्रेक्ष्य का सम-सामयिक बोध में व्यापक विघटन होने के साथ प्रभावी हुआ है। इतिहास के इंजन को अब केवल उत्पादन-संबंध और शक्तियाँ प्रेरित करती हैं, प्रायः कठमुल्लई की मिसाल माना जाने लगा है। अब धर्म, कला, सामाजिकता और अन्य आधार केवल मात्र मूल उत्पादन संबंधों के प्रतिबिम्ब नहीं ठहरा जा सकते। राष्ट्रीय और सांस्कृतिक सम्वेदना की स्वायत्ता की यह नूतनतम वकालत इतिहास की दृष्टि को सम-सामयिक इतिहासकार की अपनी मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब दर्शाती है। चिरन्तन सत्य युक्ति हो, पर मानवीय अनुभूति नहीं हो सकती। इतिहासकार के सम्मुख प्रकृति मूलक चिरंतन तथ्य या साक्ष्य नहीं होते। और जो निष्प्राण, अचेतन तत्व अपरिवर्तनीय रूप में विद्यमान होते हैं, उनको भी हमारी समीक्षा सतत नए आधारों पर व्याख्यायित करती है। इतिहासकार की निजी संवेदनाएं, अपने युग-सापेक्ष दृष्टिकोण और विचारधारा समूची तटस्थता और वस्तुनिष्ठ साक्ष्यों की सार्वजनीय पुनर्रचना के आदर्श पर टिके रहने के बावजूद अपने इस अतीत के साथ किए गए संवाद और स्वयं निजी सचेत आकांक्षाओं की सावधानी के विरुद्ध अवश्यमेव बैठेगी। ऐसे काल्पनिक संवाद से परहेज इतिहास वृत्तांत को मात्र गणितीय बीजक नाम सूची और प्रदेशों को खाको और कालगणना की तारीखों में शून्य धर्मी बना डालेगा। यह संवाद प्रारम्भ से अन्त तक इतिहास वृत्तांत की जीवन शक्ति है। यहाँ वृत्तांत की दुविधा है कि एक और इस संवाद से कटकर यह एक लुंज-पुंज अपाहिज कथानक व्यर्थता की अनुभूति देगा, यह फिर स्वयं इतिहासकार की सम-सामयिक संवेदना की अभिव्यक्ति भी वृत्तांत में अनिवार्यतया जुड़ी पाई जायेगी।

यह बात अत्यंत विचारणीय है कि जैसे साहित्य मनीषी स्वर्गीय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रायः कहते थे कि एक मूक इतिहास की रचना में प्रायः नाम और तारीखें शायद अतीतवत होती हों, बाकी सब कल्पना ही होती है, जिसके विपरीत एक सफल उपन्यास में नाम तारीख, स्थान प्रायः सही नहीं होते, पर बाकी तो सारा उपन्यासकार और उसके सम-कालीनों का सहज देखा, किया, भोगा सत्य, तथ्य, यथार्थ और केवल यथार्थ होता है।

3.2.4 इतिहासकार के मूल्यांकन और मानव मूल्य :

इतिहास वृत्तांत के स्वरूप की पूर्ण चर्चा में इतिहासकार द्वारा प्रस्तुत मूल्यांकनों की बात करने की जरूरत स्पष्ट ही है। यहां इस मूल्यांकन की बात करने के साथ-साथ स्वयं मूल्यों के स्वरूप और हमारे जीवन में इन मूल्यों की भूमिका को भी स्पष्ट

पहचानना आवश्यक किया जायेगा । सर्वप्रथम हम देखेंगे कि मानव व्यवहार के सुचारु निर्देशन के लिए मानव बुद्धि उन सभी कार्यों और निर्णयों का मूल्यांकन शाश्वत अथवा शाश्वत प्रतीत होने वाले सम-सामयिक मानदण्डों के आधार पर मनुष्य के जीवन को सही आदर्श एवं मार्ग-दर्शन देने के लिए करते हैं । समाज, राज्य, विद्यालय, धर्माचार्य, जनमत, न्यायाधीश विशिष्ट एवं अन्योन्य आदर्शों, नियमों, मूल्यों और मानदण्डों को मुक्त एवं निर्विवाद मानकर उनसे सम्बन्ध आचरण के विपरीत या विश्वासों के विरोध की ताड़ना अथवा निन्दा करने की जिम्मेदारी निभाते हैं, ताकि समाज, राज्य, मानव समूह इन त्रुटियों के हानिकारक प्रभावों से बचाए जा सकें । ऐसी त्रुटियों के तीन स्तर आसानी से पहचाने जा सकते हैं । एक व्यक्ति जो दैवी शाश्वत मूल्यों की अवहेलना करता है, वह 'पाप करता है, और उसे देवद्रोह की ताड़ना धर्माधिपति देने की भूमिका निभाते हैं राज्य विधान कालांतर में परिवर्तनशील हैं, और उनके अन्तर्गत बने नियमों का उल्लंघन दण्डनीय अपराध है, जो न्यायालय और प्रशासन विधान और नियमों की रखवाली और उसके सम्मान की रक्षा करने के लिए सभी समाजों में संस्थागत रूप से करते हैं । किन्तु यदि कोई व्यक्ति अमानवोचित व्यवहार करता है, तो उसे विक्षिप्त एवं रूग्ण मानसिकता का शिकार मानकर उसको सामान्य शाश्वत मानवीय प्रकृत स्थिति में लाने के लिए उपचार करना मनोचिकित्सक का दायित्व माना जाता है । ऐसे मनोरोगी के स्वस्थ होने के पहले समाज से उसका बहिष्कार आवश्यक पाया जाता है । समाज की सामान्य मूल्य-रचनाओं, और उनकी सुरक्षा और गरिमा को उसके व्यवहार से अप्रभावित रखने के लिए उसे पृथक निगरानी, प्रहरी और अभिभावकों के नियंत्रण में रखना आवश्यक माना जाता है । इन सभी व्यवस्था के प्रहरियों की सामान्य आस्था है कि ऐसे नियंत्रणों की अनुपस्थिति में समाज, मानव संस्कृति, की नींव ही खतरे में पड़ सकती है । इस प्रकार ऐसे मूल्य- अभिभावक (धर्माचार्य, न्यायाधीश, मनोचिकित्सक)- क्रमशः दुष्टमना पापी, समाज विरोधी अपराधी और मनोरोग से पीड़ित, विक्षिप्त व्यक्ति पर मूल्यों के मुस्तैद निर्देशन को लागू करते हैं 'मूल्य', इस प्रकार केवल अमूर्त आकांक्षा, आदर्श, और वायवी मानसिक विलास नहीं है ।

उपर्युक्त मूल्यों के स्वरूप को स्पष्ट रूप से जान चुकने के बाद यह जाहिर है कि अतीत के व्यतीत पात्रों को इतिहासकार की स्तुति निन्दा अब न तो कोई अलंकरण और न कोई दण्ड दे सकने में समर्थ है । विख्यात रोमन् इतिहासकार पालिव्यूस का वक्तव्य इस संदर्भ में सार्थक पहचानने की जरूरत है, वह कहता है, कि इतिहासकार अपनी मृत्योपरान्त निन्दा के भय द्वारा व्यय मानव व्यवहार के अशुभ और अपराधी प्रकारों को कमी भी परिसीमित नहीं कर सकता' ।

इस विचार का एक प्रविधि संबंधी स्पष्ट आदेश है कि इतिहासकार नैतिकता का पक्षधर बनकर केवल अपने बौद्धिक व्यवसाय से अपदस्थ हो सकता है, जिसे निर्वाह करना भी किसी युक्तिशील व्यक्ति की मानसिक और नैतिक जिम्मेदारी है । इतिहासकार नैतिक वातर्ता को अपने असंयम से कोई मूल्य प्रवर्तन में कोई योगदान नहीं दे पायेगा ।

इस संदर्भ में इतिहासकार के व्यवसाय में मूल्यांकन की चर्चा में निम्न वर्जना सर्वप्रथम विचारणीय है कि वह अपने विषय पर न केवल व्यक्तिगत नैतिक रुचि बल्कि अपने सम-सामयिक बोध के मूल्य परिप्रेक्ष्य और प्रतिमानों को भी न लादे । उन व्यतीत जगत की सरचना, संस्थाओं और आस्थाओं को परावर्ती मूल्यान्वेषणों के प्रकाश में न आंके । ऐसा करना कालक्रम के साथ अनावश्यक छेड़खानी होगी । यह आज प्रायः सामान्य ऐतिहासिक विधि की निर्विवाद आस्था मानी जाती है । मूल्यों की इस प्रकार की युग, जाति, संस्कृति सापेक्ष अवधारणा और व्याख्या को मानने की भी अपनी दूसरी कठिनाईयां हैं, इन्हें आपत्तिजनक विसंगति तक सिद्ध किया जाता है, जिसे इतिहासवाद कहा जाता है । क्या सभी मूल्याकांक्षाएं समान स्तर और सीमा तक युग सापेक्ष होती हैं ? यह छद्म मूल्यांकन सार्वभौमता की विसंगति है कि हम अपने समकालीन आदर्शों को अन्य समाज व्यवस्थाओं के मूल्यांकन के लिए मानदण्ड की तरह प्रयोग करने में नहीं हिचकिचाते । किन्तु क्या मानव अनुभूत मूल्यान्वेषण में कोई सर्वकालिक साम्य परिमाणतेय रूप से अमान्य होता है ?

यह इतिहास के सर्वेक्षण स्पष्ट करते हैं कि मानव अतीत के विभिन्न युगों में परस्पर विरोधी नैतिक मूल्य धारणाएँ शाश्वत एवं चिरन्तन ठहराई जाती रही हैं, उदाहरणार्थ 'जौहर', 'सती', 'साका' आत्मबलि सामंती समाज के आत्यंतिक मूल्य का प्रतीक मानी गई थी, जबकि परावर्ती मानववादी नैतिकता उसे झूठी अहमन्यता और क्रूरता का प्रतीक ठहराने लगी है । पितृ सत्ता-मूलक समाज के मध्यकालीन दौर में सम-सामयिक नारी समता ओर मुक्ति के आन्दोलन ठेठ अनैतिक मूल्यहीनता का संकट दिखाई पड़ते, उसी तरह जैसे की मध्यकालीन धर्मयुद्ध, अथवा धर्मपातकियों का पोपवाद के द्वारा मारे जाना आज के वैज्ञानिक मानववाद को मूल्यहीनता अन्ध-कड़मुल्लई और बुद्धि शून्यता की काली रात दिखाई पड़ती है । युगीन बोध के इस प्रकार आमूलचूल बदल जाने के बाद हमारे अदुविधाहीन मूल्य परामर्श विवादास्पद हो उठते हैं । शायद आगे आने वाले समाज में यौन जीवन और उसको संचालित करने वाले नियमों में भी अनेको क्रांतिकारी रदोबदल हमारे समकालीन आदर्शों (विवाह, परिवार, बच्चों का लालन पालन) को उखाड़ फेंके ।

यह युक्ति मूल्यों की सतत् सार्वभौम आभासों की सम-सामयिक सापेक्षता और इनकी अन्योन्याश्रयता को इतिहास के विराट कूड़े दान में फेंके जाने के अनेकों दृष्टांतों से हमारा साक्षात्कार कराती है, निस्संदेह । इतिहास क चित्त केवल संदेह और प्रश्न चिन्हों के ही नैतिक मूल्यों के आधारों के संबंध में उजागर करता है, यह प्रत्येक-मूल्य-आस्था की भयावह असुरक्षा, अनास्था, क्षोभ और उनसे जनित आक्रोश का कारण बनेगा । इस अग्नि-परीक्षा से गुजर कर कोई भी व्यावसायिक इतिहासविद अपनी चर्चा को सापेक्ष सम-सामयिक फतवेबाजी से उबारना अवश्य ही चाहेगा । दुविधा इस इतिहासवाद की यहीं केन्द्रित है कि चूंकि सभी मूल्य विवेक युग सापेक्ष पाए जाते हैं, क्या इतिहास किसी भी मानवोचित गरिमा के किसी भी चिरकालीन प्रतिमान को सतत् अपदस्थ करने के लिए बाध्य है ? क्या इतिहास का सर्वेक्षण अपने ऐतिहासिक वृत्तांत में मनुष्य की बर्बर, पाशिवक निरंकुश, कबीली, हिंसक, हर, गुलामी से निकलकर विधि समता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व, सौहार्द और शिष्ट मत भेद, बहस और संवाद और

सहनशीलता के संयम के किसी अंकुर को नहीं देख पाता या पूरी तरह नकार सकता है ? या ऐसा विश्वास थी हमारी सम-सामयिक ऐतिहासिक प्रगतिवाद की जीवन दृष्टि का छलावा मात्र है ? क्या वह यह मानने के लिए मजबूर हैं, कि इतिहासकार का दायित्व साक्ष्यों की युक्तिसंगत व्यवस्था देकर कथानक लिख देने मात्र से पूरा हो जाता है, और उन मानवीय व्यापारों में अभिव्यक्त कौन प्रतिमान, मूल्य, वहाँ चरितार्थ हुए या कोई अन्य आदर्श उभरे कोई मानवोचित गरिमा और रचनात्मकता के चरण आगे बड़े पहचाने जाए या नहीं इतिहास वृत्तांत के बनाने वाले के व्यवसाय से बाहर नैतिकता के प्रश्न है, ऐसा मत, वस्तुतः इतिहास वृत्तांत का विद्रुप सा लगता है, यह उचित दृष्टि नहीं स्वीकार की जा सकती । हमने पूर्ववर्ती (3.231) चर्चा में यही पाया कि इतिहासकार का व्यावसायिक संवाद जो अतीत के जीवन के साथ किया जाता है उसमें उन पात्रों की अन्तस प्रेरणाएं निजी महत्वाकांक्षाएं, भय, रूचियाँ, वरीयताएँ पहचानने और रेखांकन की लाज़िमी ज़िम्मेदारी अपने वृत्तांत की रचना के लिए अनिवार्य हैं, हाँ उसे स्वयं अपने सम-सामयिक मूल्य परिप्रेक्ष्यों से इन चरित्रों के मूल्यों को परस्पर न घपलाना और न टकराने देना चाहिए । उसके सत्यान्वेषण की यहीं मौलिक मांग सदा होती है । इस प्रकार का मूल्य संयम उस इतिहास वृत्तांत की सफलता का बहुमूल्य मानदण्ड भी है । पर यह बात आदर्श में जहाँ इतनी आकर्षक लगती है, क्रियान्वयन में उतनी ही दुरुह पाई जाती है, हमारे वृत्तांत इतिहास की बातें करते-करते स्वयं इतिहासकार के मन्तव्यों की अनजाने में ही अभिव्यक्ति करने में फिसलते रहते हैं । उसका वृत्तांत सचेत और सायास रूप से सम-सामयिक मूल्य परिप्रेक्ष्यों की मुहर अनजाने ही ताने बाने पर छोड़ने के लिए प्रारम्भ से अन्तिम निरूपण तक प्रायः मजबूर पाया जाता है । चूंकि मूल्यांकन केवल संकल्प, चरित्र अथवा संस्थाओं का ही नहीं होता, बल्कि किन विशेष आदर्शों और मानव लक्ष्यों को अपने जागतिक परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण पाता है, उसके विषयगत चयन, निर्णय, जो केवल किसी एक नीति घटना अथवा संस्था को विषय बनाने मात्र में केवल तथ्य मूलक साक्ष्यों द्वारा कभी पूर्व-निर्धारित नहीं होते, वे इतिहासकार के अनकहे मानव मूल्यों के आधार द्वारा नियोजित होते हैं । यह पूरा तथाकथित वृत्तांत प्रारम्भ से अन्त तक उर्कत चेतन / अचेतन दृष्टि की मूल्याभिव्यक्ति होगी, निस्संदेह ।

इतिहासकार उन सतत् विश्वसनीयता, सार्वभौमता के प्रति-स्पर्धी दावों को निरूपित करता है जो उसके विषय में उभरते हैं, और बार बार सापेक्षता की कसौटी पर केवल युगीन मूल्य ही ठहर पाते हैं, उन सभी साझीदार युगीन बोधों के अजस्र मूल्यशीलता के दावों के बावजूद । इसीलिए मूल्यों की वस्तुनिष्ठ धारणा के प्रति इतिहासकार के शंकालु वृत्ति एवं खीझ को समझा जाना जरूरी है, इस शंकालु वृत्ति से दो बातें साफ हैं कि इतिहासकार को अपनी सम-सामयिक मूल्य प्रतिबद्धता को अत्यधिक नियंत्रण में रखना अपने वृत्तांत रचने के बौद्धिक कार्य को सम्पन्न करने की अपरिहार्य शर्त है, उसके विषय में दृष्ट मूल्य, विवेक द्वारा उसकी निजी मूल्य वृत्तियों से सदा बचाए जाने चाहिए, परस्पर गड़मड़ नहीं होने चाहिए । दूसरी कि समस्त साक्ष्यों को इतिहासकार किसी एक युग में ही प्रायः कई प्रतिस्पर्धी मूल्यानुभूतियों को

अभिव्यक्त करते पाए जाते हैं, यह अनिवार्यतया विरोधी नहीं होते । जैसा हमने पहले (3.2.3) में देखा है कि एक और केवल एक मूल्य परिप्रेक्ष्य मात्र किसी एक देश-काल में अवतरित नहीं होते, ये परस्पर पूरक मूल्य दृष्टियाँ समान साक्ष्यों द्वारा इतिहास वृत्तान्त निरूपितकर सकता है । इस प्रकार एक रेखीय अदुविधाजनक एक ही मूल्य-व्यवस्था सम्पूर्ण इतिहास वृत्तान्त में नहीं उभरती । स्वयं इतिहास के निर्माता मानव संकल्प के ही अनुरूप इन संकल्पों का वृत्तान्त भी इतिहासकार के लिए सतत् विकल्पमय ही बना रहता है । यह बौद्धिक स्वायत्तता, युक्तिशीलता और रचनात्मकता अन्य मानव संकल्प के अनुरूप इतिहास वृत्तान्त के रचनाकार को भी सम्भवतया बराबर उपलब्ध है ।

3.3 विज्ञान (दृष्टा, नीति, भावोन्मेष) :

'तथ्य' और 'साक्ष्यों' के वर्गीकृत अमिधामूलक कथन और उनसे सिद्ध सार्वभौम नियम और उनके संयोजन विज्ञान माने जाते हैं । इस योजना का आधार हमारे सामान्य साक्ष्य होते हैं, इनकी परीक्षा, समीक्षा सतत् को जा सकती है, तदनुसार विज्ञान की वैधता पूर्ण रूप से अविवादी बन जाती है । वैज्ञानिक संज्ञानात्मक प्रयास स्वयं अपने प्रस्तावित संयोजनों को अपदस्थ करने वाले परिमाणात्मक प्रयोगों से आमुख करता है, और केवल वे अपराजित प्रस्ताव ही विज्ञान के कलेवर में मानव बनते हैं, जो इन सारे परीक्षणों में खड़े रह सकते हैं । विज्ञान तथ्यों का सर्वाधिक मान्य प्रारूप मात्र माना जाता है, उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति एवं मूर्त तथ्य मूलकता नहीं । किन्तु इस असंदिग्ध प्रारूप में भविष्योक्ति (निश्चित त्रुटि सीमा के भीतर) और संकेताको और चरों के उपलब्ध हो सकने के उपरान्त पूर्ववांछित स्थितियों को सचेत नियंत्रण द्वारा प्राप्त करा सकने की अचरज भरी क्षमता होती है ।

यह 'प्रारूप' मूर्त ऐकिको और उनकी अनुभूतियों को प्रायः निरर्थक सापेक्षताएँ मानकर व्यर्थ मानते हैं, और उत्तरोत्तर 'प्रारूपों' के स्वयं अन्य गणितीय आकार और सांख्यिकीय समीकरण विन्यास प्रस्तावित करते चलते हैं । इस वैज्ञानिक प्रगति के साथ हमारी जगत दृष्टि से सुदूर निकल जाती है । यह एक साधारण विज्ञान के इतिहास का सत्य है कि जैसे जैसे किसी क्षेत्र के वैज्ञानिक संज्ञान में मार्मिक प्रगति होती है, उक्त विज्ञान के प्रारूप मानव के सीधे प्रत्यक्षों से उतने ही दूर निकल जाते हैं ।

विज्ञान मूर्त ऐकिक के स्थान पर पुनरुक्ति, पुनर्परीक्षण सार्वभौम परिभाषा, मापन, वर्गीकरण, प्रयोग, भविष्योक्ति नियम और प्रारूप द्वारा मानव संकल्प की शक्ति को प्रकृति और मूर्त घटनाओं पर अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप नियंत्रण जारी करने का औजार है । वह तदनुसार जागतिक विषयों में दो टूक परिमाणमूलक अपरिहार्य समीकरण उद्घाटित करने में संलग्न रहता है, और उनके सामूहिक प्रयोग से कृषि, उद्योग, संस्कृति, व्यापार, औद्योगिक उत्पादन के उत्तरोत्तर विकसित साधनों द्वारा मानव जीवन को सुविधा-मूलक और सुखद बनाने का गुरुतर दायित्व निभाता है । इन प्रभावों को ध्यान में रखते हुए, युद्ध और शान्ति दोनों आयामों में विज्ञान का वर्चस्व आज सम-सामयिक जीवन में अत्यंत केन्द्रीय बन चुका है । विज्ञान मूलतया सार्वभौम प्रारूपों को सार्वकालिक तन्त्र में प्रस्थापित करने की मान्यता पर बल देता है । यह निर्विवाद है कि विज्ञान का पिछला इतिहास सम्भवतया पूरी तरह इस दावे से

मेल न खाये, किन्तु समूचे विज्ञान तंत्र में यह प्रवृत्ति बड़ी सीमा तक विद्यमान अवश्य रहती है। इस दक्षता और नियंत्रण द्वारा विज्ञान मानव नीति और संगठन और सामान्य जीवन में श्रम की उत्पादकता को सतत बढ़ाता जा रहा है, जिससे उसके अमूर्त प्रारूपों की यथेष्टता पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं लगाए जा सकते। विज्ञान प्रायः पूर्ण संज्ञान का ही पर्याय माना जा रहा है।

इस संदर्भ में विज्ञान के विभिन्न वर्गीकरणों की चर्चा करना भी सुविधाजनक होगा। प्राकृतिक, जैविक, सामाजिक और मूल्यात्मक विज्ञान प्रायः विज्ञान विषयों की भिन्नता का संकेत करते हैं। विधि और तकनीक में इन विभिन्न क्षेत्रों में खासी दूरियाँ हैं। मापन प्रयोग और परीक्षण और पुनर्परीक्षण की सूक्ष्मता में भी गहरी असमानताएँ पाई जायेंगी। प्राकृतिक खगोल विज्ञान में प्रयोग सम्भव नहीं हैं, और जीव विज्ञानों में विशिष्ट प्रक्रियाओं (अणुजीवी, अथवा अवयवी) के पुनर्परीक्षण निर्बाध नहीं होते। मापन और पुनर्रचना भी सम्बन्ध स्तरों पर संतोषजनक नहीं होती, तदनुसार, परिमाणात्मक भविष्योक्तियाँ, नियंत्रण और नियम प्रारूप भी इन विज्ञानों में प्राकृतिक विज्ञानों के समानान्तर सार्वभौम नहीं ठहरते।

किन्तु इस इतिहास सम्बंधी इकाई के लिए निम्न वर्गीकरण अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। वे विज्ञान जो गणितीय प्रत्ययों और परिभाषाओं द्वारा केवल मात्र यौक्तिक पुनर्रक्तियाँ स्थापित करते हैं, और अपरिहार्य नियम प्रतिपादित करते हैं, दूसरे वे जो विभिन्न चरों के प्रारूपों के मापन पुनर्संयोजन, नियंत्रण एवं भविष्योक्तियों द्वारा परिक्षणीय और सत्यान्वेषित नियम विभिन्न क्षेत्रों में संकलित करते हैं। तीसरे वे जो स्वयं मानवीय अस्तित्व और प्रक्रियाओं का विश्लेषण एवं संज्ञान अमूर्त तत्त्वों का उनकी व्यवहारिक अभिव्यंजनाओं के सारूप्यों में जानना चाहते हैं। इस क्षेत्र में मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र काफी आगे बड़े हैं। इनसे भिन्न एक और प्रकार के विज्ञान भी चिन्त्य हैं। जैसे: विधि-विज्ञान, नीति विज्ञान, सौन्दर्य-विज्ञान एवं मानवीय व्यक्तित्व-विज्ञान। यहां हम 'मूल्यों' की नियामक, तथ्यात्मक एवं विधिमूलक भूमिकाएं समानान्तर क्रियाशील पाते हैं। इन सभी स्तरों पर वस्तुनिष्ठता और मूर्तता का विभेद मार्मिक रूप से सामने आता है। वह भली प्रकार समझा जाना बाकी है।

इसी संदर्भ में, व्यक्ति की मशीनी पुनर्रक्ति की सम्भावनाएँ भी संकेत वहती हैं। मनोविज्ञान अन्तर्मुखी व्यवहार को बाल साक्ष्यों द्वारा समझने में कई पीढियों से संलग्न रहा है, किन्तु अभी हाल में कम्प्यूटर पुनर्रचनाओं द्वारा मनुष्य की वैयक्तिक वैशिष्टता की पुनर्गठन की कई आश्चर्यजनक सफलताएँ देखने में आई हैं, स्मृति, आकांक्षा, प्रवृत्ति, दक्षता और इनके संयोगों का विश्लेषण करके आज का उद्योगपति, जनमानस का निर्माता, विज्ञापन विशेषज्ञ और मनोविश्लेषक अपने विषयों को अनजाने ही उनके स्वभाव और वृत्ति के नियंत्रण द्वारा किसी भी इच्छित दिशा में तोड़ मरोड़ सकने में सफल होता लगता है। यहाँ तक की व्यक्ति के मुक्त रास-रंग, आकर्षक विकर्षण, संकल्प और निर्णय भी सुदूर निर्धारकों के परिसीमनों से नियंत्रित करने लायक सक्षम कम्प्यूटर बनाए जा चुके हैं। क्या स्वयं मानव अपने द्वारा बनाए यन्त्रों द्वारा एक कठपुतली बन चुका है? यह प्रश्न आज केवल विद्या-विलास नहीं रहा है।

3.3.1 विज्ञान और समाज-विज्ञान

समाज विज्ञान सामाजिक यथार्थ का संज्ञान इकट्ठा करते हैं। किन्तु सर्वप्रथम यह बात जानना अनिवार्य है कि इन विषयों की उपलब्धि जैविक प्रक्रियाओं और कायिक अव्यवस्थाओं के मूर्त स्वरूप से मिलती है। 'व्यक्तित्व', 'धन', 'संविधान', 'नियम', 'परम्परा', 'संगठन' संस्थागत तथ्य हैं, इन्हें संकेतित और उपलब्ध कराने के लिए समाज वैज्ञानिक बौद्धिक परिभाषाओं और वैचारिक नियमों द्वारा प्रक्षेपण एवं चेतन सीमांकनों द्वारा एक विषय सामग्री का संज्ञापन प्राप्त कराता है, यह प्रक्रिया स्वयं सामाजिक संस्था, भाषा और उसके नियम सम्मत आकारों को प्रयोग द्वारा ही सम्भव है, इस प्रकार समाज विज्ञान जिन तथ्यों और मूर्त तत्वों को ऐकिक और व्याख्या के आधार के रूप में मुक्त पर ठहराता है वे स्वयं सामाजिक प्रक्रियाओं ('नियम-पालन', 'नियम-परिभाषा', 'नियम अनुमति') द्वारा उत्पादित होते हैं, (देखें : पीटर विच की पुस्तक समाज-विज्ञान का विचार राउतलेज, 1964) इस प्रकार यहाँ विज्ञान की खोज के सोपानों और उसके विश्लेषण द्वारा उपलब्ध सामान्य-प्रारूपों में सम्मिश्रण उक्त विज्ञान की पारदर्शी युक्तिशीलता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है।

हम अपने इतिहास के स्वरूप के अध्ययन में (3.21) यह बात रेखांकित कर चुके हैं कि इतिहास विज्ञान नहीं बन सकता क्योंकि मानवीय चिन्तन अपनी विधियों द्वारा अपने सामाजिक यथार्थ को मुक्त रूप से पुनर्विल करके किसी भी पूर्व-कथनों को व्यर्थ करता रहेगा मूर्त विज्ञानों सरीखे नियंत्रित प्रयोग मानवीय गरिमा के प्रतिकूल पाए जायेंगे, जिनके अभाव में इस प्रकार के विज्ञान केवल सर्वेक्षण और विश्लेषण द्वारा मात्र सांख्यिकीय सहचर्य प्रतिपादित कर सकेंगे, जो वैज्ञानिक भविष्योक्ति न दे पायेंगे, इनके द्वारा पूर्ण नियंत्रक समाज प्रक्रिया के प्रारूप उपलब्ध न हो सकेंगे। और ऐसे सुदृढ़ निष्कर्षों के अनुपलब्ध होने पर समाज वैज्ञानिक किसी भी वैज्ञानिक कार्य विधि द्वारा सामाजिक प्रौद्योगिकी के लिए सक्षम सिद्धांत अथवा मार्ग-दर्शन देने में सिद्धांततया अक्षम होंगे। इस प्रकार मानव व्यक्तित्व का वर्चस्व समाजविज्ञान की आकांक्षाओं को विफल करता रहेगा, और यह ही तर्क हमें इतिहास की व्यक्ति केन्द्रित पद्धति अपनाने का औचित्य भी स्पष्ट करता है। पुनः समाज विज्ञानों में मानव चैतन्य, नियम अनुसरण और बौद्धिक पूर्वाभासों की सहज सार्वभौमता उसके चरों और उनकी परस्पर अन्तः-क्रियाओं का स्वयं उसके द्वारा उपार्जित सत्यांवेष्टियों द्वारा ग्रसित होने से इन विज्ञानों की उपलब्धियों को प्रामाणिक अथवा आत्मघाती बनने से नहीं बचाया जा सकता। उदाहरण के लिए यदि हमें यह मालूम हो कि पेट्रोल की कमी होने वाली है, तो हम उसे और अधिक छिपा देंगे। कीमतों में गिरावट या स्फीत, बैंकों का दिवाला निकलना और उसके व्यावहारिक नियंत्रण समाज में उसके संज्ञान की प्रक्रिया का हस्तक्षेप स्पष्ट दर्शाते हैं।

चूंकि समाज विज्ञान प्रायः समता, न्याय, वर्ग स्वार्थ, सम्पत्ति वर्ग-हितों का निरूपण करता है, और समाज-रचना स्वयं इन मानकों के सुचारु क्रियान्वयनों द्वारा गढ़ी जाती है, इन परिभाषाओं और अवधारणाओं का वस्तुतः चेतन / अचेतन पूर्वाग्रहों, रागद्वेषों और विभिन्न वर्गों

के प्रचार और अन्य स्वार्थ सिद्धि के सोपानों से मुक्त रखना असम्भव है । इस प्रकार तटस्थ सत्यान्वेषण में समाज-विज्ञान पदार्थ-विज्ञानों से बहुत पीछे है । यह केवल निष्प्राण अमूर्त साधारणीकरणों और सांख्यकीय सहचर्य की खोज कर सकते हैं, वह भी वैज्ञानिक स्वेच्छाचारी पूर्वाग्रह लिप्त विकल्प पूर्ण अवधारणाओं के आधार पर ही । समाज पदार्थ न होकर संकल्प है ।

3.3.2 विज्ञान का इतिहास और समाज -विज्ञान

क्या विज्ञान के विकास की भी कोई समाज शास्त्रीय योजना ढूंढी जा सकती है ? प्रायः विज्ञान एक अराजक संक्रमण माना जाता रहा है, जो विभिन्न सत्यान्वेषियों की सम्मिलित उपलब्धियों द्वारा प्रगति मार्ग पर सतत् अग्रसर होता पहचाना गया है । इसी प्रकार समाज विज्ञान भी अन्योन्य विभूतियों के चिन्तन, सर्वेक्षण और समीक्षाओं को नवनीत समझा जाता रहा था । किन्तु इधर कार्ल मार्क्स द्वारा विचारधारा' और कार्ल मान्हाइम की संज्ञान के प्रतिमान' की गहरी सोच ने परम्परागत वैज्ञानिक मुक्तता और अकाव्य सार्वजनीन स्वरूप पर पुनर्विचार की मांग को सशक्त स्वरों में उठाया है । इस दृष्टि से, यह पूर्वा ग्रह एक युगीन जीवन दृष्टि में संकलित पाए जाते हैं, जो समाज और उस परम्परा के मेरुदण्ड की भूमिका अदा करते हैं, सभी साधारण अवधारणात्मक कलाप, खोजें, परिभाषाएँ, सत्यान्वेषण इस केन्द्रीय दृष्टिकोण के इर्द-गिर्द अपनी जगह बनाते हैं, और अपनी विशिष्ट संभावनाओं का चरितार्थन प्राप्त करने में यत्नशील रहते हैं । कोई भी वैज्ञानिक प्रयोग, कार्यक्रम, संकल्पना, और सिद्धान्त ऐसे अपने धारक और बुनियादी प्रारूप को सामान्य अवसरों पर कोई चुनौती नहीं देता और न दे सकता है, चूंकि यह दृष्टि उनके कार्यान्वयन की पूर्व-मान्यता है । यह सभी सत्यान्वेषणों में पूरी तरह रचे बिंधे होते हैं । कुहन (टी.एस.कुहन : 'वैज्ञानिक क्रान्तियों का तन्त्र', शिकागो 1958) के अध्ययन ने विज्ञान के इतिहास में क्रान्तियों का स्वरूप ढूंढा है । उसके अनुसार एक युग प्रवर्तक नवीन दृष्टि के उद्भव से पूर्वकालिक वैज्ञानिक सत्यान्वेषणों का पूर्ण कायाकल्प हो जाता है । इसके अति सूत्रीकृत दृष्टांत पिछले चार सौ साल के विज्ञान में यहां संकेत के लिए उद्धृत करते हैं । पहला कोपर्निकस और गेलिलियो द्वारा टाल्मी के पृथ्वी केन्द्रीय खगोल को सौर खगोल द्वारा अपदस्था, और उसकी प्रतिक्रियावादी पोपवाद के हिंसक भर्त्सना, द्वारा अपदस्था, और उसकी प्रतिक्रियावादी पोपवाद की हिंसक भर्त्सना, दूसरा 19वीं सदी में डार्विन का विकासवादी प्राणिशास्त्र, जिसने स्वयं मानव के दैवी स्रोत को क्षत विक्षत कर दिया, और तीसरा बीसवीं सदी का आइंस्टाइन का देश-काल की चतुआर्यमी सममिति का नया पदार्थ विज्ञान जिसने सम्पूर्ण सार्वजनीन वस्तुओं के न्युटोनियन क्रिया तन्त्र को सापेक्षता के नए प्रारूप में परिवर्तित कर दिया । गति ओर भार का सपिंडन इसका एक दूसरा क्रान्तिकारी आधार बना, नाभिकीय अणुविज्ञान के दूरगामी प्रभाव अणु शाखों के प्रयोग में उभरे, यह नाटकीय मोड़ विज्ञान द्वारा प्रारम्भ जरूर हुए, किन्तु इनके विस्तृत प्रभाव, कला, साहित्य, व्यापार, धर्म, प्रशासन और अर्थ-व्यवस्था पर भी बहुत गहरे पाए

गये । इसी प्रकार का नया क्रान्तिकारी परिच्छेद स्वयं मानव संरचनाओं के कम्प्यूटरीकरण में अत्याधिक समकालीन विज्ञान और इक्कीसवीं सदी के पहले चरणों में भावी क्रान्ति कोई आशंका उजागर कर रही है । इन क्रान्तिकारी विज्ञानों ने हमारी सहज एक रेखीय विज्ञान के इतिहास के सर्व समावेशन पर गहरी आपत्तियाँ उठाई हैं । विज्ञान का कालातीत सम्यक सत्यान्वेषण, इस दृष्टि से अब उचित विचार नहीं बचा है । वहाँ भी दृष्टि सापेक्ष्य' तथ्य, साक्ष्य, मापन, परिभाषाओं की भूमिकाएँ रेखांकित की जा रही हैं । यह युगीन प्रारूपों में क्रान्ति होने से अपरिहार्यतया रूपान्तरित होंगी ।

यदि यह स्थिति स्वयं मूर्त विज्ञानों की है, तो निश्चय ही समाज विषयक विज्ञानों के निष्कर्ष और संबंधित प्रारूप समाज की तत्कालीन रूचियों, आकांक्षाओं, मूल्य परिप्रेक्ष्यों और विचारधाराओं के अनुरूप अपने सत्यान्वेषणों द्वारा की गई सर्वकालिक दावेदारियों के बावजूद पूर्ण रूप से आच्छादित होंगे । निहित स्वार्थ, वर्ग-बोध दृष्टि सापेक्षता और इनसे उत्पादित पक्षधरताओं की वकालत और सम-सामयिक रूझानों और प्रवृत्तियों से दामन बचाकर समाज-विज्ञान, प्रसारित माध्यम की सतत् मांगों को बीच गुजरते किस उत्पादित सत्य को आज मण्डी में उतारेंगे, और वह किस सीमा तक फैशन और पत्रकारिता की मांगों से ऊपर उठ सकेगा कह पाना कठिन लगता है । इस चिंतन के फलस्वरूप समूचे विज्ञान के सत्यान्वेषण के सार्वकालिक दावों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को पुनर्विचार के लिए उभारा गया है । स्वयं काल निर्पेक्षता के दावों की ऐतिहासिक व्याख्या जरूरी लगती है । विज्ञान का ऐतिहासिक वृत्तांत स्वयं इतिहास वृत्तांत का एक सार्थक उपांग उमर कर सामने आया है ।

3.4 नैतिकता

इस आयाम का अत्यंत सीमित संकेत ही यहां किया जायेगा । इतिहास में मूल्यांकन (3.24) की चर्चा ही इसका केन्द्र होगी, और इस विषय पर निरूपण हम पहले कर चुके हैं, उनकी पुनरावृत्ति से यहाँ, हम बचेंगे । मानव जीवन के लिये व्यावहारिक निर्देशन सदा नियामक आधारों (आदर्श, लक्ष्य, गुण, प्रतिमान) पर दायित्व, सदाचार और प्रतिबद्धता का अन्वेषण और उनके द्वारा विशेष कार्यों का सद् 'असद् अवमूल्यन किया जाता है । समाज, शासन, विधान, राजनीति, अर्थ-व्यवस्था, शिक्षा, परिवार या अन्य सामाजिक व्यवहार के सभी नियोजन, नियंत्रण, क्रियान्वयन एवं उनके मूल्यांकन के लिए हमें ऐसे स्पष्ट व्यापक मूलभूत प्रतिमान और उनके विनियोग योग्य प्रारूप निरूपित करने पड़ते हैं । यह नैतिक अवधारणाएँ मानव जीवन और व्यवहार की अपरिहार्य पूर्वापेक्षाएँ उसी प्रकार सार्वभौम हैं, जैसे प्राणी मात्र के लिए रक्त अथवा श्वास का प्रवाह । जीवन मात्र के लिए खाद्य सामग्री की उपलब्धि और प्रजनन द्वारा नए सदस्यों का अवतरण जिस प्रकार अनिवार्य पूर्व-दशाएँ हैं, उसी स्तर पर मानव जीवन की यह संरचनात्मक पूर्वमान्यता है कि वह केवल अबोध जीवधारियों से भिन्न स्तर की चेतन मानसिकता का स्वामी है और स्वरचित नैतिक आदर्शों द्वारा अपनी जैविक और कायिक क्रियाओं को इन आदर्शों के प्रकाश में सुरक्षा निर्देशन देने में सदैव यत्नशील होता है । इन मूल्य चरितार्थों की यदि समस्त सम्भावनाएँ ही किसी युग में विलुप्त पाई जाए तो उक्त घटना-संघात को अमानवीय दौर ठहराया जायेगा, जिससे मानव इतिहास को कोई सरोकार नहीं होगा ।

3.4.1 नैतिक मूल्यों की सापेक्षता का इतिहास ।

नैतिक सिद्धांत, इतिहास वृत्तांत बतलाता है कि संस्कृति के अनेकों परिवर्तनों के साथ सहज ही बदलते रहे हैं । विभिन्न युगों की संस्कृतियों का सर्वेक्षण विभिन्न युगीन नैतिक मूल्यों की मान्यता के साक्ष्य बलपूर्वक स्पष्ट करते हैं, कि यह सदा एक ही नहीं रहे हैं, और परस्पर असिद्ध और विरोधी भी पाए जाते हैं । इस परिप्रेक्ष्य में यह नाना प्रतिस्पर्धी नैतिकताएं यदा-कदा परस्पर विपरीत आदेश भी देती हैं, इनका सहज चरितार्थन उन दशाओं में असम्भव होता है । विश्व के सार्वभौम प्रवाह में हमें अनेकों नैतिकताओं का साक्ष्य मिलता है, बर्बर, सामंतशाही, धर्माधीशों द्वारा स्थापित, धर्म निरपेक्ष यौक्तिक नैतिक आदर्श विज्ञान सम्मत अनेकों युगीन दृष्टियां और आदर्शों का निरूपण इतिहासकार अपने वृत्तांत में करता है । यह रोचक सत्य है कि यह सारी सम-सामयिक नैतिकताएँ अपने तदर्थ कालों में समान रूप से निर्विवाद, सर्वोच्च, एवं आत्यंतिक प्रतिमान विश्वसनीय पाई गई । दुर्भाग्यवश, इतिहासवात्ता का यह संजीदा निष्कर्ष है कि किसी एक युग के नैतिक बोध की संगति काल परिवर्तन के बाद अधिकतर जाने वाले परावर्ती युगों के मानव व्यवहार के लिए केवल बोझ, रूढ़िवाद, और मात्र परम्परागत प्रतिक्रियावादी लीक सम्मोहन रह जाती है । यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है, क्या इस कालखण्ड की मूल्य संवेदनाओं से भिन्न किसी अन्य सार्वकालिक मूल्यों की भी कोई निशानी इतिहास वात्ता दे सकने में सफल होती है ? प्रायः इतिहास वात्ता इन सरल कालजयी मूल्यों की वकालत के प्रति संशय शील होती है वह इन सभी सदाचार और नीति के प्रहरियों को व्यवस्था के पैरोकार निहित अविवेक, अज्ञान और अनजाने सत्ताशाहों की गुलामी करने वालों की जमात के अवसरवादी दलाल ठहराती है । इनकी लपेट से प्रायः इस शोषण के आखेट भी अपनी मानसिक क्षीणता के फलस्वरूप प्रायः बैठे रहते हैं । मार्क्स की छद्म मानसिकता की अवधारणा इसी तथ्य का निरूपण है । रूसी, लेकिन, और माओ ने क्रमशः फ्रांसिसी, रूसी और चीनी क्रान्तियों की वकालत में इसी भयावह महामारी को मिटाने का आह्वान किया था । सर्वहारा की नैतिक चेतना की बौद्धिक गुलामी का वर्णाश्रम धर्म और कर्म सिद्धांत का अनुमोदन एक मार्मिक भारतीय इतिहास-वृत्तांत का साक्ष्य है ।

बीसवीं सदी के सार्वभौम विज्ञापनों और संचार साधनोंकी भयावह चपेट में आया आज हमारा सम-सामयिक जीवन निपट मूल्यहीनता की ओर उछाले मारता बढ़ रहा है । सभी नैतिक दृष्टियाँ आज बेमानी होती लगती हैं, केवल मात्र पाश्विक वृत्तियाँ (मैथुन, भय, आहार) आज के प्रवृत्तिमूलक सतत् सर्व उपलब्ध माध्यमों द्वारा मानव की मानसिकता पर जमती जा रही है, आत्म संयम, संकल्प, विवेक केवल आदिम प्राचीनों की रूढ़ियाँ मात्र लगती हैं, जो इन नियोन प्रतीकों के कौंधते चकाचौंध में सदा के लिए खत्म हो जायेंगी । क्या इक्कीसवीं सदी पुनः कोई नए नैतिक मूल्य चिन्तन को जन्म देगी ? ऐसा प्रश्न है, जिसे हम अनुत्तरित ही छोड़ना चाहेंगे।

यहाँ यह संक्षिप्त रूप से विचारणीय है कि नैतिक सापेक्षतावाद की जैसी पैरवी समकालीन पत्रकारिता, इतिहास वृत्तांत, और समाज-विज्ञान मानवता को सिखाने में पिछले कुछ दशकों में मुखर रहा है, उसके विरोध में क्या कोई युक्ति सार्वकालिक नैतिकता के पक्ष में भी प्रस्तुत की जा सकती है ? व्यक्तित्व सापेक्ष, वर्ग-सापेक्ष, राष्ट्र एवं युग सापेक्ष मूल्य और नैतिक सापेक्षतावादी व्याख्याओं का बोलबाला पिछले कुछ वर्षों से अत्याधिक मुखर रहा है सामान्यतया इसने नैतिक विसंगतियों और सांस्कृतिक अराजकता को प्रोत्साहन दिया है, इसे इतिहास और वैज्ञानिक वार्ताकार दोनों समानरूप से मानने के लिए आज मजबूर हैं । किन्तु ऐसी निर्विवाद सापेक्षतावाद की वकालत के पीछे क्या कहीं कोई दृष्टि, निष्कर्ष, साम्य, मूल्य, चिरंतन मानवीय आस्था भी हम ढूँढ पायेंगे ? यह इतिहास वार्ता, और समाज-विज्ञान की वार्ता और उसमें निहित मूल्य-सादृश्यों की गहरी समीक्षा और पुनः उक्त समीक्षा की किन मूल आधारों पर छान-बीन हो सकती है, जानना हमें सम्मिलित रूप से नैतिक चिन्तन से जोड़ने के लिए बाध्य करेगा । यह दायित्व प्रायः निभाया नहीं गया है, कोरी मूल्यात्मक नानात्व की वकालत जैसी अनगढ़ इतिहास वृत्तांत जैसे अपने खण्डित विषय संबंधी साक्ष्यों के सर्वेक्षण द्वारा व्यक्त करते हैं, समकालीन संदर्भ में किसी यौक्तिक नैतिकता के लिए विश्वसनीय आधार देने में असफल हैं । सांख्यिकीय सहचर्यों को स्थापित करने वाली व्याख्या किसी भी नीति का औचित्य सिद्ध नहीं कर सकती ।

3.5 नैतिक, विज्ञान और इतिहास

अभी तक हमने पृथक रूप से क्रमशः इतिहास, विज्ञान और नैतिकता की चर्चा की है । यहाँ इस खण्ड में उनकी परस्पर अन्तर-व्याप्ति की संक्षिप्त चर्चा करेंगे । यह तीनों प्रत्ययन प्रक्रिया परस्पर मुक्त एवं विभिन्न स्तर पर स्थित असम्बद्ध बौद्धिक परामर्श हैं, यहाँ हम स्पष्ट रूप से कह देना जरूरी समझते हैं कि इनके संयोजन की बात उक्त मूल्यात्मक निर्णय की घटना और इस मूल्य-चैतन्य का परिस्थिति और शुद्ध अनुभूति द्वारा संरचना ध्यान देने से परस्पर जोड़े जा सकते हैं । मूल्य मानकों, मुक्त अनुभूतियों और भाव-प्रवणताओं और आदर्श अन्वेषणों में सहज ही योजनाबद्ध समरूपता पहचान पाना बहुत मुश्किल नहीं है । इतिहास वृत्तांत अपने दायित्वों के निर्वाह द्वारा अपने व्यावसायिक बोध को नैतिक चिन्तन का आधार प्रायः नहीं बनाता । किन्तु विस्तृत असंदिग्ध मानवीय घटनाओं का संज्ञान, उनमें निस्मृत मानव आकांक्षाओं के मूल आधारों की नैतिक सार्वकालिक चर्चा की अपेक्षाकृत बायवी एवं कल्पनाजन्य व्याख्या को तथ्यमूलक साक्ष्य और वैज्ञानिक सार्वभौमता प्रदान करने में सहायक हो सकता है । इस प्रकार मानव चित्त की अधिकारी अवधारणा यथार्थ समाज की जानी सूचना पर ही बनाई जाए तो प्रामाणिक होगी । यह इतिहास, समाज-विज्ञान और नैतिक चिन्तन का संगम बन सकता है । इसी प्रकार नैतिक चिन्तन भी सम-सामयिक मूल्य परिप्रेक्ष्य को शाश्वत मूल्य मानने की भ्रान्ति से इतिहास और समाज विज्ञान के सत्यान्वेषणों को देखने से अपने को बचाया जा सकेगा ।

3.5.1 मानवीय अस्तित्व एवं मूल्य

इस प्रगतिवाद एवं क्रान्तिकारी राजनीति तथा सतत् विकासशीलता के स्वप्न के टूटने से उपलब्ध त्रास एवं निर्वसनता के संदर्भ में सम-सामयिक मानव चेतना मोह भंग की पीड़ा झेलने को मजबूर है। तदनुसार समकालीन नैतिक चिन्तन तथ्य' और मूल्य' के बीच गहरी खाई देख रहा है। मानव अस्तित्व और उसकी ऐतिहासिक नियति उसे इतिहास वार्ता की कई विसंगतियों और चेतना शून्य प्रकृति के लिए सभी नैतिक आदर्श मात्र मानव आकांक्षाओं के छलावे एवं दिवास्वप्न मानने को मजबूर करते दिखलाई पड़ते हैं। जागतिक-भौतिक योजना में जैसा कीरज के संलाप में तत्कालीन भौतिकी की दृष्टि सीमा संकेत की गई थी जब उसने अपनी अनुभूति का यह स्पष्ट मूल्य रेखांकित किया था, कि मेरा इन्द्रधनुष केवल प्रकाश रश्मियों का शंकुवर्तन मात्र नहीं है' - अर्थात् मानवीय संवेदनाओं का संतुलन एवं उनमें समाहित मूर्त मूल्य स्थलित प्रकृति के निस्संपंद होने मात्र से निराधार प्रलाप नहीं बन जाते। 'मूल्य', मानव की सर्जनशील संभावनाएँ हैं, और इस प्रकार उसके अपने अस्तित्व की संवेदनशील नियति भी। यह उसकी मानसिकता के अविभाज्य अंग हैं। गुरुवर रविन्द्र नाथ टैगोर ने इस विषय पर अगने उदात्त सम्मोहक चिन्तन को निम्न मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है: पद्या पर डोलती पूर्ण चांद की रात की निहारती झिलमिल क्यों दरिद्र नाविक को केवल पाई रत्ती के मिट्टी के तेल की बचत का अहसास भर ही दे पाती है?' मानव बोध की अत्यंत सशक्त भावना का संकेत कराती है, कि हम स्वयं प्रकृति के अधीन प्रारम्भ जरूर करते हैं, यह हमारी नियति का प्रथम चरण है, किन्तु हम इस स्थिति से जूझते जूझते कहीं न कहीं अपने संवेदनशील भावों द्वारा एक सार्थक भाव जगत रचकर अपनी नियति को मुक्त परिणति भी देते हैं। रौरव विसंगतियों से प्रतिदिन क्षत विक्षत काल रात की अमावस में विगलित होता मानव चित्त इस नारकीय त्रास को भोगता, हारा थका, आशा की किरण, मुक्त शिशु की किलकारी सुनने और एक नई सुबह के स्वप्न सजाने के लिए ही सोता है। सम्भवतया, इसी दृष्टि का मर्म जॉन कीटज ने अपने जीवित रहते, अपनी समाधिलेख के लिए लिखा था, सुन्दर प्रवृत्ति नदी की गोद में यहाँ सोया है, प्रतिभावान जॉन कीटज, जिसे उसने अपने ललित शब्दों से और भी सुन्दर बनाया'। टैगोर नैतिक भावना की अभिव्यक्ति अपनी निम्न आस्था द्वारा करते हैं जब भी कोई नवजात शिशु अपनी पहली किलकारी के साथ इस संसार में नई अनगूँज भरता है, तो पुनः हमें यह अहसास होता है कि परमेश्वर ने मानवता से अपनी आस्था अभी खोई नहीं है'।

3.5.2 सर्वकालिक आधार मूल्य

मानव जीवन का ऐतिहासिक और वैज्ञानिक विश्लेषण प्रायः मूर्त वैशिष्ट्यों और साधारणीकृत प्रत्यय उपकरणों के विरोधी पैमानों द्वारा उपलब्ध किया जाता है। हमने यह अपनी चर्चा के पिछले खण्डों (3.23,3.3) में स्पष्ट तरह पहचाना है। किन्तु

नैतिकता का भी एक स्व प्रकाशित अहसास होता है, जो उसके मर्म स्थान में इस समूची बौद्धिक व्यवसाय की चरम परिणति है, जिसे हमने अभी (3.51) ऊपर काव्य बोध की शब्दावली और वार्त्ता में प्रगट किया था । यह अहसास भी निजीतौर पर उतना ही ग्राह्य है, जितना साक्ष्यों द्वारा अनुमोदित तथ्यों का वृतांत अथवा समाज वैज्ञानिकों के वैध साधरणीकरण । किन्तु इन सभी बौद्धिक संरचनाओं की गहराई तक पहुंच द्वारा की गई व्याख्या स्पष्ट करेगी कि इन वैविध्यपूर्ण गुमराह करने वाले तथ्यों के दिशाहीन जमघट के पीछे मानवीय नैतिकता का निस्संदेह और शाश्वत प्रभावी कलेवर पाया जा सकता है, जिसे प्रायः तथ्य मूलक संज्ञानों में अतिलिप्त विज्ञान कर्मी पा सकने में दुर्भाग्यवश असफल होते हैं । इस कडुए तथ्य को पहचानना भी मानव व्यवहार के इतिहास के वृतांत के परिचर्चाकार का एक दायित्व है । अबाध मानवीय जीवन के इस समूचे विराट कथानक को निरर्थक और दिशाहीन तथ्यों का विसंगत बाहुल्य मात्र ठहराना विद्या-विलास हो सकता है, पर वस्तुतः जीवन के साक्ष्यों के प्रति गैर-जिम्मेदारी के तेवर का एक दुखद फल थी है । या फिर केवल संकीर्ण, खण्डित घटनाओं को उनके विभाजित और असम्बद्ध रूप से पृथक-पृथक प्रस्तुत करने के बुद्धिधाती चिंतन-पद्धति का मसखरापन ।

प्रत्येक संवेदनशील मनस, प्रायः मानव व्यवहार की अनगिनती विभत्सताओं, और पीड़ाओं के अवलोकन को बिना भुलाए देख सकता है, कि मानवीय चेष्टाओं में अनेकों विरोध और तात्कालिक सापेक्षताएँ आयेंगी, होंगी, और विभिन्न संदर्भों में उनमें सदा एक पूर्ण आकारिक संयोजन अथवा ऋजु रेखीय प्रगति का सीधा कम भी प्रतिपाठित नहीं किया जा सकता । फिर भी यह भी निर्विवाद है कि निम्न मानव नियति के अकाट्य और सार्वभौम प्रतिमान सर्वकालिक मानव-मूल्य हैं :

- (क) जीवन का नैरन्तर्य ।
- (ख) बुद्धि और मानसिकता का सम्भव सार्व-भौम सम्प्रेषण ।
- (ग) मानव की निर्बाध स्वायत्तता ।
- (घ) सर्जनशीलता ।

इन मूल्यों की पहचान करा पाना स्वयं इतिहास बोध की मानवीय विरासत की संग्रहित विपुल सामग्री की सही व्याख्या होगी तथा स्वयं इतिहास की जिज्ञासा को अर्थवान दिशा देने के लिए जरूरी दिक्-सूचक उपकरण ।

3.6 निष्कर्ष : इतिहास की सीख

कार्लाइल ने एक बार अपनी फ्रांसीसी क्रांति द्वारा जन्य संतप्त दुखद मनः स्थिति में निम्न त्रासमय वाक्य लिखा था: कि इतिहास (वृत्त) की एक मात्र सीख केवल यह है कि मनुष्य इतिहास से कुछ भी नहीं सीखता' । हम पीछे इस चर्चा में इस तथ्य का स्पष्टीकरण देते रहे हैं कि इतिहासकार को अपने अध्ययन में अपने विषय में उपस्थित चरित्रों या संकल्पों पर नैतिक स्तुति, चारण-धर्मो प्रशस्ति गायन अथवा न्यायाधीश का निर्णय देने की कोई भूमिका नहीं अपनानी चाहिए । वह इस प्रकार की भर्त्सना, उपदेश, फतवे, आक्रोश अथवा साधुवाद से किसी

भी प्रकार मानव मूल्यों के उन्नयन अथवा उपलब्धि में सहायक नहीं होगा । उसकी सत्यनिष्ठा जितनी यथार्थ साक्ष्यों के बारे में राग-द्वेष मुक्त होगी, उपर्युक्त चर्चित सार्वभौम दृष्टि द्वारा सिक्त और युक्ति संगत आधारों द्वारा रचित तटस्थ वृत्तांत अपने पाठक को देगी । यह वृत्तांत जितना किसी भी बाह्य आग्रह से मुक्त बनाया जा सकेगा, उसकी उपयोगिता मानव मानसिकता को सही मानवीय जीवन जीने लायक दृष्टि हासिल कराने में अधिक सफल होगी । इस प्रकार इतिहास वार्ता में प्रमुख मूल्य तो केवल मात्र सत्यान्वेषण ही ठहराया जा सकता है, दूसरी ओर उसके व्यवसाय और शिल्प की यह मांग है कि वह अपने मानस में अत्यंत संवेदनशील सहनशीलता और मानव स्वायत्तता के प्रति समर्पण भाव विकसित करें । इतिहास का चिन्तन, मनन, लेखन हमारे सीमित, संकुचित, अविचारित पूर्वाग्रहों से हमें मुक्त करता है । यह तो हमारे मूल्यांकन की प्राथमिक कसौटी है ही । कोई भी इतिहासकार वैविध्य, नानात्व और मूल्य वैशिष्ट्य को किसी विशेष पूर्व-चित्त्व प्रारूप में ठुंसकर किसी कृत्रिम विचारधारा को केवल छद्म यथार्थ एवं विचार शून्य अनुमोदन ही उपलब्ध करा सकता है । किसी भी मानवहित, कल्याण अथवा जनशक्ति को फूहड़ नारेबाजी से नहीं साधा जा सकता । यह इतिहासकार और वैज्ञानिक व्याख्या का सामान्य जाना माना निष्कर्ष है । ऐसा संजीदा मानसिक अहसास है, जो इतिहासकार को निम्न उदास दृष्टि देता है कि हमें निकृष्टतम व्यक्ति के भीतर भी मानवीय भावों की आभा दूढ़ पाने की चाह उपजायेगा, और सुविख्यात लोक श्रुत मसीहों, संतों, शहीदों, जन-नायकों और स्वप्रचारित सदाचार के पुतलों के घर के मिट्टी के चूल्हों को भी संकेत देगा । और साक्ष्य मिलने पर इन लोकप्रिय नायकों की सच्ची छवि उबारने में हिचकिचाएगा नहीं । इतिहास पक्षधरता से मुक्त रहकर भी मानवोचित गरिमा को तिलांजलि कमी भी नहीं दे सकता।

मानवता असंख्य माया मृगों की मरीचिकाओं के पीछे भागती है व्यवधानों में प्रायः उलझती है, फिर भी इस सघन अंधकार की वृत्तियों से सतत ज्योतिपुंज की ओर बढ़ती है, असद, अशिव, पाशिवक और दासत्व से सतत मुक्त होती सदाचार और शुभ की ओर अग्रसर रहती है । और मृत्यु की नृशंसता पर इतिहास चिन्तन चिरंतन प्राण के अमरत्व की अवश्यम्भावी जीत का गजर बजाता है । यह निष्पाप, दो टूक, निखालिस सत्य, पूर्ण सत्य, सत्य के अलावा और कुछ नहीं केवल इतिहासकार का निर्द्वन्द्व सत्यान्वेषण ही प्राप्त करा सकता है । क्योंकि इतिहास वार्ताकार अब्राहम लिंकन की बहुश्रुत लोकतन्त्रीय आस्था से सहमत है कि: 'आप कुछ लोगों को सभी कालों तक गुमराह रख सकते हैं, और सभी लोगों को कुछ अवधि तक, पर सम्पूर्ण मानवता को सतत झूठ का दोहन कोई भी नहीं छका सकता' । इतिहास, विज्ञान नैतिकता की भांति ही इस अनुपस्थित अदृश्य प्रहरी का बराबरी से दासत्व स्वीकारता है ।

कोई सच्चा इतिहासकार अवसरवादी की कायरता, नपुंसकता, भीरुता, चाटुकारिता या घृणा का कभी शिकार नहीं बनता । और न वह निन्दा-स्तुति (माल्यार्पण अथवा छवि बिगाड़ने की ईर्षालु वृत्ति) को अपने सत्यान्वेषण की गरिमा के अनुकूल पाता है । उसकी नसीहत इस अनिश्चित कालक्रम में स्वयं चेता वृत्ति द्वारा मानवीय नियति का बिना किसी मिथक या मुखौटे के सहज अनावरण मात्र है, इस प्रक्रिया में अतीत के जीवन्त पात्रों के अनुभवों से सीखने

की चाह भी है, और उनकी त्रुटियों से 'अपने आज' का दामन बचाने की गुज़ारिश भी । और वह यह भी जानता है कि इतिहास कमी पुनरावृत्ति नहीं करता ।

इन आयामों को बूझने के आधार पर सभी समकालीनों की अन्धी कामनाओं, प्रतिस्पर्धाओं, पूर्वाग्रहों के थोथे परामर्श और लोकप्रियता की ललक और नुस्खे इतिहास वृत्तांत के लिए घातक है । इतिहासकार न्यायाधीश की पीठ पीछे टंगी न्याय की देवी जो आंखों पर पट्टी बांधे तराजू के पलड़ों को समान करती है से तुलनीय है, शायद वह इतना उदात्त न हो सके, फिर भी, वह संवेदनशील मानवचित्त का चितेरा तो जरूर है, इतिहास का प्रतिपादन चाहे सीधी नसीहत या हिदायत शब्दों द्वारा न भी दे सके, तो भी विश्वसनीय दृष्टांत द्वारा मूल्याभिव्यक्ति तो अनायास इस वृत्तांत में स्पष्ट उभर ही आती है । वस्तुतः केवल मात्र ऐसी सीख ही इतिहास के वृत्तांत की देन है ।

3.7 सारांश

इस इकाई में इतिहास वृत्तांत की समीक्षा की गई है । विज्ञान और नैतिकता से इसके संबंध को युक्ति संगत आधार पर समझने का यत्न किया गया है ।

सर्व प्रथम इतिहास वृत्तांत और विज्ञान में क्या मौलिक भेद है, इन दोनों प्रकार के तथ्य मूलक अध्ययनों में स्पष्ट किया गया । इतिहास समकालिक चरों की संरचना के स्थान पर अपने विषय, कालखण्ड के उपस्थित अवशेषों के साक्ष्य और अभिलेखों के आधार अतीत के मानव संकल्प और इनके मूर्त वैशिष्ट्यों का प्रामाणिक निरूपण करने में यत्नशील होता है, वह न तो कोई नियंत्रित प्रयोग कर सकता है, और न किसी भी प्रकार के सार्वभौम प्रारूप प्रतिपादित कर सकता है । फलस्वरूप वह कोई अपरिहार्य नियंत्रण का उपकरण नहीं बनता जिसके विपरीत विज्ञान और समाज-विज्ञान भी ऐसे सांख्यिकीय सहचर्यों एवं सीमित कार्य कारण आधारों के द्वारा उपलब्ध नियामक प्रारूपों के रेखांकन के आदर्श से अनुप्राणित अवश्य हैं, वे मूर्त प्रकृति विज्ञानों से कहीं कम प्रभावी प्रारूप रच पाते हैं । हमने इस सम्बन्ध में विस्तृत आधार पर समीक्षा की और पाया कि मानव संकल्प एवं आरोपणों और प्रक्षेपणों द्वारा निर्मित समाज शास्त्रीय विज्ञान के प्रत्यय उस तरह परिमाणात्मक आधार पर वस्तुनिष्ठ नहीं होते जैसे निर्वाक तत्वों के चर संघात, इस दृष्टि से समाज विज्ञान अपनी आकांक्षाओं दवाओं में प्रायः गतिरोध का अनुभव करते हैं ।

इतिहासकार का दायित्व निष्प्राण साक्ष्यों को मानवीय पात्रों को निजी सोच तक संवाद द्वारा पहुंचने के लिए मार्ग प्राप्त करना है । अपनी परिकल्पनाओं और संवेदनाओं और का भी सोपन इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इतिहासकार आवश्यक पाता है ।

इतिहासकार के मूल्यांकन सम-सामयिक मूल्य परिप्रेक्ष्यों से ग्रस्त नहीं होने चाहिए । इतिहासकार का अपने को अतीत की घटनाओं को सुधारने में दत्तचित्त नहीं होने देना चाहिए । इतिहासकार के अपने सत्यान्वेषण के लिए तटस्थ संवेदना और नानात्व के प्रति सहनशीलता को अपने विषय (व्यक्ति, उनके संकल्प एवं संस्थागत नियमों) में अभिव्यक्त मूल्यों से कोई मिश्रण नहीं होने देना चाहिए । मूल्य पूर्वाग्रहों और सापेक्षता के आकारों से इतिहासकार अपने वृत्तांत में

सभी युगों की मूल्य सार्वभौमता की प्रतिस्पर्धी दावेदारी से कैसे निपटें, हमने विश्लेषण करने का यत्न किया है ।

नैतिकता और मूल्य मानव व्यवहार एवं संस्कृति की विभेदक वैशिष्ट्य हैं । क्या सभी नैतिकता सतत् रूपान्तरित होती है? क्या मानव जीवन के लम्बे इतिहास का केवल सापेक्षतावादी मूल्य-विरोधी परिप्रेक्ष्य ही इतिहासकार अपने वृतांत के सत्यान्वेषण के आधार पर स्वीकार कर सकता है ? हमने इसके विपरीत युक्तियों से जीवन-नैरन्तर्य, सम्प्रेषणीयता, स्वायत्तता और सर्जनशीलता को मानव जाति के कालमयी सार्व-भौम आधार मूल्यात्मक पूर्वापेक्षाएँ सिद्ध करने का दावा किया है, और हमने यह भी दिखलाया कि प्रायः इतिहासकार इन चार प्रतिमानों द्वारा ही विभिन्न युगीन मानव जीवन की सफलता और विकास का मूल्यांकन करते हैं ।

इतिहास की एक मात्र सीख सत्यान्वेषण और नानात्व मूल्यों में परस्पर सहचर्य' दूढ़ना है हम इसे निष्कर्षतया उचित मानते हैं ।

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'इतिहास' पद के दो स्पष्ट अर्थों की चर्चा करें । आप इनमें से किसको इस पद का वैध धारक मानते हैं ? अपने उत्तर के पक्ष में युक्तियाँ दें ।
2. क्या इतिहास की पुनर्रचना को अतीत से प्राप्त साक्ष्यों द्वारा पूर्णतया नहीं किया जा सकता? वे कौन से अन्य तत्व हैं जो स्वयं इतिहासकार का मानस इस वृतांत में जोड़ते हैं?
3. साक्ष्यों की काट-छांट से जो 'केंची गोद' से निर्मित इतिहास वृतांत बनता है, वह क्यों असंतोष जनक पाया जाता है ? इस दुविधा का क्या कोई हल चिन्त्य है ?
4. इतिहास और विज्ञान में क्या रिश्ता है ? उनकी पद्धतियों और विधियों के अन्तर स्पष्ट करें।
5. क्या मूल्य, भावना, विचारधारा, प्रवृत्ति का इतिहास नहीं लिखा जा सकता ? नहीं तो क्या जा सकता ? नहीं तो क्या मूर्त घटनाएं ही मानव संकल्प का सार हैं ?
6. मार्क्स और पापर के विवाद पर ध्यान दें, 'क्या सचमुच हमारी सारी ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता एक छद्म पक्षधरता मात्र है ?
7. क्या इतिहासकार को अपने वृतांत में उपदेश, प्रशस्ति, निन्दा या आदेश देने की कोई सार्थकता है ? ऐतिहासिक मूल्यांकन और नैतिकता के रिश्ते को रेखांकित करें ।
8. क्या इतिहास का विश्लेषण या निरूपण मात्र बाह्य घटनाओं या अतीत के पात्रों के वस्तुगत संकल्पों और लक्ष्यों तक ही सीमित रहना चाहिए ? क्या नैतिक मूल्य इतिहासकार के विवेचन से सदा बहिष्कृत किये जाने चाहिए ?
9. विज्ञान में मूल्यों की कोई गुंजाइश नहीं, और नैतिकता का विश्लेषण स्पष्ट करता है, कि मात्र घटित तथ्यों द्वारा मूल्य निर्धारण नहीं किया जा सकता । इतिहास का अध्ययन इन दो प्रतिकूल दृष्टियों को किस प्रकार समन्वित करने में रुचि रखता है ?

3.9 संदर्भ ग्रंथ

1. Bloch Horc : Historian's Craft, Manchester Univ. P 1959
2. Berlin Isaiah : Four lectures on Liberty, Oxford,
3. Croce Benidetto : History as the story of Liberty, London, Aleen & Unwin 1949.
4. Carr E.H. : What is History? Machamillan, London 1961
5. Collingwood R. G. : Idea of History, oxford 1948.
6. Gradiner P. : Nature of Historical Explanation, oxford, 1952.
7. Heller Agnes T. : Theories of History, Rout ledge & Kegan Paul, London, 1982.
8. Gottschalk L. : Generalization in the Waiting of History, Social, Sc. Research Council Chicago Univ. 1963.
9. Kuber T.S. : Sturcture of Scientific Revolutions Chicago Univ, 1956.
10. Popper K.R. : Poverty of Hitoricism, Beacon Press Boston, 1957.
11. Valery Paul : History and Politics Routledge & Kegan Paul, London, 1963.
12. Winch peter : Idea of Social Science Rutledge & kegan Paul, London 1964.

इकाई - 4

इतिहास और सामाजिक विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

- 4.0 उद्देश्य
- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उन्नीसवीं सदी में इतिहास एवं सामाजिक विज्ञान
 - 4.2.1 हेगेल
 - 4.2.2 रांके
 - 4.2.3 कार्ल मार्क्स
 - 4.2.4 डार्विन तथा अन्य वैज्ञानिक
 - 4.2.5 डिल्थे
 - 4.2.6 वेबर
- 4.3 बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इतिहास और सामाजिक विज्ञान
 - 4.3.1 ऐक्टन
 - 4.3.2 क्रोचे और कालिंगवुड
 - 4.3.3 ओसवाल्ड स्पेंगलर और ऑरनल्ड टॉयन बी
 - 4.3.4 डी. एच. कार
- 4.4 बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इतिहास और सामाजिक विज्ञान
- 4.5 इतिहास पर सामाजिक विज्ञानों का प्रभाव
 - 4.5.1 समाजशास्त्र और मानव-विज्ञान
 - 4.5.2 मनोविज्ञान
 - 4.5.3 अर्थशास्त्र
 - 4.5.4 राजनीति शास्त्र
 - 4.5.5 भूगोल
- 4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 4.7 संदर्भ ग्रंथ
- 4.0 उद्देश्य:

- (i) इतिहास की उत्पत्ति की जानकारी देना ।
- (ii) उन्नीसवीं सदी में इतिहास एवं सामाजिक विज्ञान के अन्तसम्बन्धों का विश्लेषण करना।
- (iii) बीसवीं सदी में इतिहास का सामाजिक विज्ञानों में स्थान निर्धारित करना, तथा
- (iv) सामाजिक विज्ञान के विभिन्न विषयों के इतिहास पर प्रभाव का विश्लेषण करना ।

4.1 प्रस्तावना

'हिस्ट्री' शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द "हिस्टोरिया" से हुई जिसका अर्थ जांच, पूछताछ आदि होता है। भारतवर्ष में इसी का समानान्तर शब्द "इतिहास" मिलता है।

"हिस्ट्री" विषय की उत्पत्ति छठी शताब्दी ई० पू० में यूनान में हुई। हैरोडोटल इसका जनक माना जाता है। प्राचीन और 'मध्यकालीन युग में भी अलग-अलग देशों में इतिहास लिखने के प्रयास किये गये। फ्रांस की राज्य-क्रांति की प्रेरणा से आधुनिक इतिहास लेखन का आरम्भ उन्नीसवीं सदी में सर्वप्रथम यूरोप में हुआ। इस समय विज्ञान की नई विचारधाराओं तथा औद्योगिक क्रांति के परिणाम-स्वरूप नई समस्याएं उत्पन्न हो गईं। इनके समाधान हेतु यद्यपि अनेक सामाजिक विज्ञानों का प्रारम्भ हुआ, किन्तु इनका जनक इतिहास ही माना जाता है। इस समय के इतिहासकारों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। बीसवीं सदी में इतिहास लेखन ने नया रूप ले लिया। 1917 ई० की रूसी क्रांति के प्रभाव के कारण राजनैतिक इतिहास की अपेक्षा आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर अधिक जोर दिया जाने लगा। फलतः इतिहास की तुलना में अन्य सामाजिक विज्ञानों को स्वतंत्र रूप में अधिक महत्व मिलने लगा। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा उद्योग-धंधों ने अद्भुत उन्नति की, जिनका प्रभाव सामाजिक विज्ञानों पर भी पड़ा। नई समस्याओं के समाधान हेतु सामाजिक विज्ञानों की नई शोध-पद्धतियों का प्रयोग इतिहास लिखने के लिए किया जाने लगा।

4.2 उन्नीसवीं सदी में इतिहास एवं सामाजिक विज्ञान:

उन्नीसवीं सदी का काल इतिहास एवं सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। विद्वानों ने इतिहास के अर्थ को परिभाषित एवं स्वरूप को निर्धारित करने का प्रयत्न किया। इतिहास को वैज्ञानिक पद्धति से लिखा जाने लगा क्योंकि मानवीय अध्ययनों पर भी विज्ञान के प्रयोग के गम्भीर प्रयास किये जाने लगे थे। इस प्रकार इतिहास को भी सामाजिक विज्ञान माना जाने लगा। इस समय ऐतिहासिक विकासवाद के सिद्धांत ने विज्ञान को भी अछूता नहीं छोड़ा। मनीषियों ने भी अपनी जूतियों में यह बतलाने का प्रयत्न किया कि किस प्रकार आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विचारों ने इतिहास के विकास को प्रभावित किया? इस समय का इतिहास प्रायः राजनैतिक होने से विवरणात्मक है तथा राज्यों से सम्बन्धित है।

4.2.1 हेगेल (1780-1831ई०)

हेगेल इतिहास-दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है। वह इतिहास के प्रवाह में परिवर्तन मात्र न देखकर क्रमिक विकास देखता है, जिसे वह द्वन्द्ववात्मक कहता है। वह पूर्वपक्ष, प्रतिपक्ष एवं संश्लेषण की चर्चा करता है। सत्य का ज्ञान उसके विपरीत उपस्थित सम्मुख कारण से होता है। इस विरोधाभास के कारण संश्लेषण अथवा संश्लिष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। यह संश्लेषण नया पूर्व-पक्ष बन जाता है जिसको पुनः

प्रतिपक्ष के सम्मुख करने से एक अन्य संश्लेषण बनता है । इस प्रकार यह प्रक्रिया चलती रहती है तथा कोई कदम अंतिम नहीं होता । हेगेल इस विकास की प्रक्रिया को इतिहास-दर्शन कहता है ।

हेगेल के अनुसार इतिहास जगत् के प्रति ईश्वर की परियोजना से संगति रखते हुए नैतिक उन्नति की ओर प्रगति करता है; किन्तु इस प्रकार की उन्नति मनुष्य के इतिहास के उद्देश्य तथा कार्यविधि की चेतना द्वारा प्राप्त की जाती है । उसके अनुसार सत्य का स्रोत प्रत्यत अथवा ईश्वर में है जो कि प्रकृति में केवल अव्यक्त रूपेण स्थित है तथा स्वयं को इतिहास में चेतना के रूप में अभिव्यक्त करता है । उसके अनुसार इतिहास के ऊपर चिन्तन में प्रवृत्त दार्शनिक का प्रमुख कर्तव्य अतीतकाल में घटित घटनाओं में निहित विवेकपूर्णता को ढूँढ़ना है । विवेक अथवा बुद्धि ही विश्व का सार्वभौम शासक है, और इस कारण विश्व हमारे सामने एक विवेकपूर्ण प्रक्रिया प्रस्तुत करता है । हेगेल का दर्शन आदर्शवादी कहलाता है ।

4.2.2 रांके

रांके इस युग का प्रभावशाली इतिहासकार माना जाता है । उसकी प्रथम महान् ऐतिहासिक कृति 1825 में प्रगट हुई । उसने करीब साठ ग्रंथों की रचना की । उसने जर्मनी, फ्रांस अथवा इंग्लैंड के प्रारंभिक आधुनिक युग के इतिहास-लेखन को विभिन्न शोधों के आधार पर प्रारम्भ किया । इसका सार्वदेशिक इतिहास' वृद्धावस्था में पूर्ण हुआ । उस समय के विश्वविद्यालयों पर उसका प्रभाव था । वह गोष्ठियों में इतिहासकार बनाता तथा अभिलेखागारों में इतिहास लिखता था ।

रांके ने अपने ग्रन्थों को लिखने में जिस आलोचना पद्धति को अपनाया, वह वास्तव में वैज्ञानिक पद्धति थी । वैज्ञानिक पद्धति से अभिप्राय निर्वैयक्तिकता तथा परिवर्तनीय पद्धति से था । रांके ने अपने ग्रंथों में इतिहास के सामान्य सिद्धांतों की भी चर्चा की है । वह मत के विषय में निर्णय देने तथा वर्तमान को शिक्षा देने का बहाना नहीं करके अपना लक्ष्य अतीत में घटित घटनाओं का उद्घाटन करना बताता है । उसका आशय यह था कि इतिहास की प्रत्येक घटना समान-रूपेण महत्वपूर्ण होती है, उसका अपना अभिप्राय होता है और वह विशिष्ट होती है । रांके इतिहास लेखन का प्रमुख लक्ष्य सार्वभौमिक इतिहास मानता था तथा साधनों के क्रमबद्ध विश्लेषण द्वारा भूत को यथार्थ रूप में देखने की योग्यता तथा उससे अपना महत्व स्वतः अभिव्यक्त कराने हेतु युग विशेष के विभिन्न पक्षों को परस्पर सम्बन्धित करने की आवश्यकता को भी मानता था । उसने सार्वभौम की व्याख्या सीमित रूप से की है, क्योंकि उसने अपने लक्ष्य को मूलतः पाश्चात्य दर्शन के परिप्रेक्ष्य में लिखा । योरोपीय राष्ट्रों के अन्तः सम्बन्धत्व का उसने बार-बार उल्लेख किया है । उसके द्वारा वैज्ञानिक पद्धति से लिखा इतिहास एक प्रकार से शैक्षणिक इतिहासकारों के लिए मापदण्ड बन गया एवं इतिहासवाद के दार्शनिक पक्ष का विवेचन अन्य इतिहासविदों के विचार के लिए शेष रह गया ।

4.2.3 कार्लमार्क्स

कार्लमार्क्स ऐतिहासिक समाज विज्ञान का प्रवर्तक कहा जा सकता है। वह हेगेल का प्रमुख उत्तराधिकारी है। यद्यपि उसने उसके द्वन्द्ववात्मक विचार की धारणा को बिना किसी संकोच के ज्यों का त्यों स्वीकार किया, किन्तु उसने हेगेल के आदर्शवादी दर्शन के स्थान पर भौतिकवादी दर्शन को प्रतिपक्ष के रूप में प्रस्तुत किया। कार्लमार्क्स का द्वन्द्ववात्मक भौतिकवाद समाज की नई विश्लेषण पद्धति तथा इतिहास की ओर नई दृष्टि है। उसने इतिहास की कुंजी आर्थिक परिवर्तन में खोजी। कार्लमार्क्स के अनुसार ऐतिहासिक संदर्भ में मनुष्य को समझने के लिए उत्पादन तथा विनिमय को समझना आवश्यक है। मनुष्य पशु से उत्पादक के रूप में ही भिन्न है। उत्पादन से सब कुछ निश्चित होता है। समाज का ढांचा और विचार इसी पर निर्भर है। इसी भौतिकवादी आधार पर कार्लमार्क्स ने इतिहास लिखना प्रारम्भ किया। इसलिए उसे इतिहास विभिन्न वर्गों के संघर्ष के रूप में दृष्टिगत हुआ। उसका यह दावा था कि बुर्जुआ पूँजीवादी ढांचा ढहने वाला है और सर्वहारा वर्ग क्रांति के किनारे खड़ा है। सर्वहारा वर्ग की तानाशाही स्थापित होने के बाद एक कल्पित आदर्शवाद की स्थिति आयेगी, जबकि वर्ग रहित समाज होगा। कार्लमार्क्स के अनुसार इतिहास निश्चित नियमों के अन्तर्गत स्वाभाविक प्रक्रिया तथा मनुष्यों द्वारा रचा हुआ और खेला हुआ नाटक है।

कार्लमार्क्स ने अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र जैसे सामाजिक विज्ञानों के विकास को भी प्रभावित किया। उसने बताया कि मानव अस्तित्व को विभिन्न वर्गों की समष्टि से निकाल कर अलग-अलग समझा जाता है। जब मनुष्य आर्थिक कारणों से प्रभावित होकर कार्य करता है तो उसका अलग से अध्ययन किया जा सकता है। कार्लमार्क्स ने सुझाव दिया कि मनुष्य के विचारों और क्रियाओं को आर्थिक संदर्भ में समझना चाहिए। इसी तरह सत्ता के लिए मनुष्य की क्षुधा राजनीति में व्यक्त होती है और उसका अलग से अध्ययन किया जा सकता है। उसने मनुष्य की परिभाषा वर्गों के आधार पर की और यह दावा किया कि मनुष्य वर्ग के सदस्य की तरह सामूहिक रूप से कार्य करते हैं और उसके सामान्य मूल्य होते हैं। मनुष्य का समाज के सदस्य के अध्ययन का यह प्रयत्न एक सीमा तक इतिहासकार भी करते हैं।

4.2.4 डार्विन तथा अन्य वैज्ञानिक :

उन्नीसवीं सदी में योरोप में इतिहासीकरण का एक अन्य पक्ष भी है। 1859 में डार्विन के "ओरिजन ऑफ स्पेसिज़" में प्रतिपादित विकासवाद के सिद्धांत ने विज्ञान अथवा जीवविज्ञान में इतिहास परिवर्तन की अवधारणा को प्रविष्ट करा दिया। आदम-स्मिथ (Adam Smith) और फ्राइड (Friedud) का भी इतिहास को अप्रत्यक्ष रूप से योगदान है।

4.2.5 डिल्थे (1823 -1911) :

वास्तव में डिल्थे ने इतिहास को सामाजिक विज्ञान बनाने का प्रयास किया । वह इतिहास को समस्त मानवीय अध्ययनों के रूप में मानता था । उसने सर्वप्रथम प्राकृतिक विज्ञान और मानव विज्ञान में अन्तर स्पष्ट किया । मनुष्य प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य तथा उसकी कृतियों का अध्ययन अधिक स्पष्ट तथा अधिक लाभप्रद रूप में कर सकता है । उसकी रुचि मनुष्य के सार्वकालिक कार्य-विचारों तथा कृतियों में थी । इतिहास के द्वारा ही मनुष्य को समझने का सूत्र प्राप्त होता है । उसके अनुसार ज्ञान के दो भाग हैं - प्रकृति के ज्ञान के लिए विज्ञान तथा मानव संबंधी ज्ञान के लिए इतिहास । डिल्थे के अनुसार सम्पूर्ण इतिहास मन की अभिव्यक्तियां हैं या आत्म-प्रकाशकीय है ।

4.2.6 वेबर :

वेबर की मुख्य रुचि समाजशास्त्र में थी जिसमें मनुष्य का सामाजिक रूप में अध्ययन किया जाता है । यह मनुष्य को उसके सामाजिक अस्तित्व तथा उसकी सम्पूर्ण अंतःसम्बद्धता में समझने के प्रयास के रूप में इतिहास के सबसे निकट है । इसी कारण जर्मनी में बहुत समय तक इतिहास को ही समाजशास्त्र माना जाता रहा ।

4.3 बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में इतिहास और सामाजिक विज्ञान:

प्रथम विश्वयुद्ध तथा रूस की क्रांति के परिणामस्वरूप इतिहास और सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन नये ढंग से किया जाने लगा । इतिहास की वैज्ञानिक पद्धति का स्थान शनैः शनैः मानव विज्ञान पद्धति ने ले लिया । राजनैतिक इतिहास की अपेक्षा सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास लिखा जाने लगा तथा राजा-महाराजाओं के स्थान पर लोगों का । राज्यों के साथ विश्व इतिहास लिखने के भी प्रयत्न किये गये । विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का इतिहास की अपेक्षा स्वतंत्र रूप से अधिक विकास होने लगा, और उनकी सामग्री का प्रयोग भी इतिहास लिखने हेतु आंशिक रूप से किया गया । इस समय के कुछ इतिहासकारों ने अपने ग्रंथों में इतिहास तथा सामाजिक विज्ञानों के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं ।

4.3.1 ऐक्टन :

रांके ने जिस आलोचना-पद्धति को अपनाया, वह वास्तव में एक वैज्ञानिक पद्धति थी । उसे अपनाने से अतीत का यथार्थ में वर्णन किया जाता था । इंग्लैंड में रांके की पद्धति में विश्वास था । उसने आधुनिक-कैम्ब्रिज इतिहास योजना बनाई, जो 12 भागों में 1902 से 1910 के बीच पूरी हुई । उसका इस योजना का मुख्य उद्देश्य उन्नीसवीं सदी में इतिहास में हुई उन्नति पर मोहर लगाना तथा साथ में आने वाली शताब्दी के लिए इतिहास लिखना था । उसके अनुसार इतिहास एक उन्नतशील विज्ञान है तथा इसका मुख्य उद्देश्य यथार्थ ज्ञान की वृद्धि करना था । इतिहास अनुभव से प्रगट सत्य

का वृत्त है। ऐक्टन के पश्चात् व्यूरीजों ने भी वैज्ञानिक इतिहास पर पुनरावलोकन किया।

4.3.2 क्रोचे और कालिंगवुड

ऐतिहासिक ज्ञान के स्वरूप को परिभाषित करने तथा मानव विज्ञान के लिए एक सुदृढ़ आधार स्थापित करने की सम्भावना का गवेषण करने का प्रयास डिल्थे के पश्चात् दो दार्शनिक इतिहासज्ञों ने किया। वे हैं - इटली के बेनेदित्तो क्रोचे तथा इंग्लैंड के आर० जी० कालिंगवुड। दोनों के अनुसार ऐतिहासिक ज्ञान मानव सम्बन्धी ज्ञान का स्रोत है। क्रोचे के अनुसार ऐतिहासिक-ज्ञान मानव-ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ रूप है तथा यह दर्शन में विलीन हो जाता है। डिल्थे का अनुसरण करते हुए वह कहता है कि मनुष्य प्रकृति के परिमंडल की अपेक्षा स्वयं अपने परिमंडल को अधिक गहराई से समझ सकता है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक ज्ञान के सापेक्षवाद तथा इससे वैज्ञानिक ज्ञान के यथार्थवादी स्वरूप के पार्थक्य पर बल देकर वह ऐतिहासिक ज्ञान की विशेषताओं पर प्रकाश डालता है। उसने अनुसार यह एक दुर्बलता न होकर - एक शक्ति है - उसके अनुसार सम्पूर्ण इतिहास वर्तमान इतिहास है। इससे तात्पर्य यह है कि प्रत्येक वर्तमान, अतीत को अपनी दृष्टि से देखता है तथा अतीत को उस रूप में नहीं देखता, जिसमें वह था। अतीत का निर्माण इतिहासकार के मस्तिष्क में होता है। क्रोचे तथा विज्ञानवादी इतिहासज्ञों के मध्य वैचारिक समन्वय स्थापित की जा सकने की सम्भावना बहुत कम है। जिस वस्तु को डिल्थे ने बनाए रखने का प्रयत्न किया था, उसे क्रोचे ने बड़ी सरलता से त्याग दिया। उसके द्वारा प्रतिपादित इतिवृत्त तथा इतिहास के मध्य भेद कम से कम इतिहासज्ञ की नई समस्याओं में से एक का स्पष्टीकरण कर देता है। कालिंगवुड की भी मान्यता है कि इतिहास एक अद्वितीय प्रकार का ज्ञान है तथा वह मानव के सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत है। "दी आइडिया ऑफ हिस्ट्री" नामक उसका महान् ग्रंथ उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक लक्ष्यों की आलोचना से परिपूर्ण है। उसके अनुसार ऐतिहासिक अध्ययन में जो दोष हैं, वे सब प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियों के अनुकरण के कारण हैं। कालिंगवुड का कहना है कि सम्पूर्ण इतिहास विचारधाराओं का इतिहास है। वह मानव के अध्ययन की विलक्षता पर बल देता है। मनुष्य के कार्य विचारपूर्ण होते हैं तथा इतिहासकार अभिनेता के विचारों की पुनरावृत्ति पर अतीत का पुनर्निर्माण करता है। क्रोचे तथा कालिंगवुड दोनों ही इतिहास में वैज्ञानिक विचारधारा के प्रयोग की अवांछनीयता के प्रति इतने अधिक सचेत हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में मानवीय अध्ययन के प्रति योगदान को स्वीकार नहीं कर पाते।

4.3.3 ओसवाल्ड स्पेंगलर और ऑरनल्ड 'टॉयनबी' :

बीसवीं शताब्दी में विश्व-इतिहास पर इतिहासकारों द्वारा लिखने का प्रयत्न किया गया है। इनमें ओसवाल्ड स्पेंगलर और ऑरनल्ड टॉयनबी के नाम प्रसिद्ध हैं।

स्पेंगलर ने "डिकलाइन ऑफ वेस्ट" लिखा। स्पेंगलर के अनुसार इतिहास से तात्पर्य मानव स्वभाव से है न कि प्राकृतिक संसार से। रेखीय विकास का सिद्धांत उसे मान्य

नहीं है। वह सम्पूर्ण मानव-इतिहास को आठ प्रमुख संस्कृति सभ्यताओं में विभाजित करता है - मिश्री, चीनी, प्राचीन सामी, भारतीय, ईरानी, यूनानी, रोमन तथा पाश्चात्य। इनमें से प्रत्येक का एक मूलभूत प्रतीक है जिसके माध्यम से उस संस्कृति विशेष के आंतरिक सम्बन्ध को जान सकता है। कोई संस्कृति अन्य संस्कृतियों से सर्वथा भिन्न है तथा उसके अपने स्वयं निर्मित मूल्य हैं जिन पर किसी अन्य संस्कृति का कोई प्रभाव नहीं है। इनमें से प्रत्येक संस्कृति विकासशील है, परन्तु स्पेंगलर को ऐतिहासिक प्रक्रिया में रेखीय विकास का सिद्धांत मान्य नहीं है। स्पेंगलर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि पाश्चात्य सभ्यता का अंत निकट है। इस सिद्धांत के प्रयोग से स्पेंगलर ने इतिहास एवं समाजशास्त्र के पारस्परिक विलय के विरुद्ध मुख्य बाधा को दूर किया। उसने समाजों के प्रारम्भ एवं अंत दोनों की कल्पना की है। उसके अनुसार प्रत्येक संस्कृति एक ऐसी इकाई है जहाँ प्रत्येक अभिव्यक्ति एक-दूसरे से सम्बन्धित है तथा जहाँ सब लोग उस संस्कृति विशेष की आत्मा को अभिव्यक्त करते हैं। उसका विश्लेषण का वास्तविक निहितार्थ यह है कि अतीत का सुनियोजित एवं अनुशासित अध्ययन असम्भव है। उसकी यह मान्यता कि प्रत्येक सभ्यता पूर्ण-रूपेण विलक्षण एवं स्वाधीन है, किसी प्रकार के तुलनात्मक विश्लेषण की सम्भावना नहीं छोड़ती, यहाँ तक कि प्रत्येक सभ्यता में मानव सभ्यता भी भिन्न है।

स्पेंगलर ने इतिहासज्ञ के एक बड़े दायित्व का निर्वाह किया है जिसका विकास मानव शास्त्रियों द्वारा विशेष रूप से आदिम संस्कृतियों के अध्ययन के अन्तर्गत किया गया है, हालांकि उसकी पद्धति अपनी सम्पूर्णता में उसको प्रभावित नहीं करती।

ऑरनाल्ड टॉयनबी ने अपना ग्रंथ "स्टडी ऑफ हिस्ट्री" दस भागों में लिखा है। उसने विश्व-इतिहास की सभ्यता को तेईस इकाइयों में विभक्त किया है। उसके अनुसार पाश्चात्य सभ्यता अवनति के अंतिम चरण में पहुँच गई है। उसके साथ वह देखता है कि प्रायः विकास का क्रम प्राचीन से आधुनिक की ओर अग्रसर होता है। उसके ग्रंथ के परवर्ती भागों में धर्म बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। जैसे-जैसे सभ्यताओं का पतन होता है, नये धर्मों का उदय होता है तथा विश्व-इतिहास की प्रत्येक अनुक्रमिक अवस्था में धर्म का स्तर उच्चतर होता जाता है। धीरे-धीरे टॉयनबी पाश्चात्य सभ्यता के सम्बन्ध में अपना निराशावाद त्याग देता है तथा एक पैगम्बर का रूप धारण कर कहता है कि यदि पाश्चात्य जगत् अपनी समयोचित भूमिका तथा उचित मूल्यों को स्वीकार कर लेता है तो वह अपनी पतनोन्मुख सभ्यता के भीतर एक नये धर्म का निर्माण कर विश्व-इतिहास के प्रति अपना योगदान दे सकता है। उसने मनोविज्ञान सहित विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के विषयों का प्रयोग इस ग्रंथ लेखन हेतु किया। इनकी अनुसंधान पद्धतियाँ तथा सामग्री का आशिक प्रयोग भी किया गया।

4.3.4 ई०एच० कार:

ई०एच० कार के अनुसार इतिहासकार तथा इतिहास के तथ्य एक-दूसरे पर आधारित हैं। बिना तथ्यों के इतिहासकार आधारहीन एवं व्यर्थ हैं, और बिना इतिहासकार के तथ्य

जीवन-विहीन तथा निरर्थक होते हैं। इतिहास, इतिहासकार तथा तथ्यों के बीच स्थित अन्तर्क्रिया की यह आदान-प्रदानात्मक प्रक्रिया है, जिसे मैंने वर्तमान तथा अतीत के बीच संवाद की संज्ञा प्रदान की है- अगोचर अथवा एकांकी व्यक्तियों के बीच होने वाला संवाद नहीं, अपितु वर्तमान-कालिक समाज तथा अतीतकालिक समाज के बीच होने वाला संवाद है।

इतिहास तब से प्रारम्भ होता है, जब मनुष्य समय क्रम को प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप में समझना छोड़कर विशिष्ट घटनाओं की एक श्रृंखला के रूप में समझने तथा परिष्कृत करने लगा। इस बात ने विवेक में तथा इतिहास में एक नया आयाम जोड़ दिया है। वह अतीत की ओर इस आशा से देखता है कि इससे भविष्य की रहस्यमयता को हटाने के लिए कुछ प्रकाश मिल सकेगा, साथ ही भविष्य के प्रति उसकी आकांक्षाएं एवं चिंताएं उसके अतीत के ज्ञान को स्पष्ट करेगी। अतीत, वर्तमान तथा भविष्य इतिहास की अनंत श्रृंखला में परस्पर घनिष्ट-रूपेण संबद्ध है।

जब से रांके ने इतिहासकार का उपर्युक्त उद्देश्य घटनाओं का यथातथ्य निरूपण बताया, इतिहास-लेखन में निर्वैयक्तिकता का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। कार के अनुसार इतिहास में तथ्यों का कोई इतिहासकार से विलग अस्तित्व नहीं होता, इतिहासकार ही अपने चयन-कर्म द्वारा तथ्यों का प्रतिष्ठापन करता है। यद्यपि इतिहास में नितांत निर्वैयक्तिकता सम्भव नहीं है, तथापि इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इतिहास का कोई प्रयोजन अथवा आकर्षण नहीं है। वस्तुतः इतिहास "इतिहासकार तथा तथ्यों" के बीच स्थित अन्तर्क्रिया की अविच्छिन्न प्रक्रिया है।

इतिहास का विषय व्यष्टि-जीवन न होकर सामाजिक-जीवन है। समाज का जीवन सम्भावनात्मक नियमों से परिचलित होता है। ये नियम ही समाज-विज्ञान के आधार हैं। इतिहास भी समाज-विज्ञान के रूप में इस प्रकार के नियमों का उपयोग कर सकता है। इतिहास का सम्बन्ध सामान्य घटनाओं से न होकर उनसे होता है जो अपूर्व और अद्वितीय होती हैं। इतिहास की विषयवस्तु सामान्य न होकर विशिष्ट होती है।

कार का कहना है कि वैज्ञानिक, समाज-वैज्ञानिक और इतिहासकार जिस एक ही अध्ययन की विभिन्न शाखाओं में व्यस्त हैं, वह है - मनुष्य और उसके वातावरण का अध्ययन। मनुष्य का वातावरण पर तथा वातावरण का मनुष्य पर प्रभाव पड़ता है।

4.4 बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में इतिहास और सामाजिक विज्ञान :

द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण इतिहास और सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन में इस समय एक नये युग का सूत्रपात हुआ। अद्भुत वैज्ञानिक उन्नति और नये युगों के परिणामस्वरूप पहिले के युग से भिन्न राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं की स्थापना हुई। इनसे नई समस्याएं जैसे समूह-व्यवहार, नागरीकरण और सांस्कृतिक संक्रमण आदि पैदा हुई। इनके समाधान के लिए सामाजिक विज्ञानों का विकास हुआ और तदनुसार नई शोध पद्धतियों को अपनाया गया। इन सामाजिक विज्ञानों में अर्थशास्त्र की बड़ी तेजी से उन्नति हुई। इन सामाजिक विज्ञानों का प्रभाव इतिहास पर भी पड़ा। इतिहास में पारंपरिक पद्धतियों के स्थान

पर इन सामाजिक विज्ञानों की नई पद्धतियों का प्रयोग शुरू हुआ। इस प्रकार का जो इतिहास लिखा गया, वह "न्यू हिस्ट्री" कहा जाने लगा।

कार्बन 14 तथा अन्य वैज्ञानिक विधियों के इतिहास के तिथि-निर्धारण में क्रांति ला दी है। विश्व के किसी कोने में जो घटना होती है उसका प्रभाव सब पर पड़ता है। विश्व एक होने जा रहा है। साम्यवादी विचारधारा का भी प्रभाव हुआ और इतिहास भौतिक दृष्टि से लिखा जाने लगा। इतिहास लिखने में राजनीति के स्थान पर आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक पक्षों पर बल दिया जाने लगा। इससे भी सामाजिक विज्ञानों का महत्व बढ़ा।

इस समय इतिहास पर सामाजिक विज्ञानों का स्पष्ट प्रभाव दो चरण में देखा जा सकता है। पहिले इतिहास का इन सामाजिक विज्ञानों के प्रति आकर्षण अन्तर्दृष्टि और नये दृष्टिकोण हेतु हुआ। इसके अतिरिक्त इतिहास के विश्लेषण (Analysis), प्रत्यय (Concept), प्रतिरूप (Model), परिमाण (Quantification) मापनी (Measurement) और सांख्यिक साधनों का भी प्रयोग किया जाता है। अर्थशास्त्र की विशेषकर अर्थमिति (Econometric) का प्रयोग भी इतिहास में देखा जाता है। आर्थिक इतिहास और ऐतिहासिक जनांकिकी (Historical Demography) इस युग के इतिहास की उपलब्धियां मानी जाती हैं। कंप्यूटर-युग में कंप्यूटर पद्धति अर्थात् क्लियमेट्रिक्स (Cliometrics) ने भी इतिहास-लेखन में क्रांति ला दी है। टॉमस ट्राउटमैन ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र पर कंप्यूटर का प्रयोग किया है। अभी हाल में "व्हिच रोड टू दी पास्ट" में भी इसका प्रयोग हुआ है।

4.5 इतिहास पर सामाजिक विज्ञानों का प्रभाव:

इतिहास और सामाजिक विज्ञानों का गठन उन्नीसवीं सदी में हुआ तथा इनकी उत्पत्ति का स्रोत एक हैं। इनका विकास बीसवीं सदी में हुआ। अन्य सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा समाजशास्त्र और मानव-विज्ञान इतिहास के पुनर्विन्यास हेतु अधिक उपादेय हैं। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अन्य सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा अर्थशास्त्र का महत्व बढ़ गया और इनका प्रभाव इतिहास पर अधिक स्पष्टता से दृष्टिगोचर होने लगा। इन सामाजिक-विज्ञानों के अध्ययन में परिमाण (Quantification) सिद्धांत का प्रयोग होने लगा। इतिहास और सामाजिक विज्ञानों का सामान्य उद्देश्य सत्य की खोज है, तथा इनका सम्बन्ध मानव के कार्यों से है। इतिहास का प्रभाव भी सामाजिक विज्ञानों पर रहा है। सामाजिक विज्ञानों के विकास की जानकारी भी इतिहास से लगाई जा सकती है। वास्तव में इतिहास भूतकाल में सामाजिक विज्ञानों का प्रक्षेप है। इतिहास, समाजशास्त्र और मानव-विज्ञान जैसे सामाजिक विज्ञानों में समय के आयामों को जोड़ सकता है।

4.5.1 समाजशास्त्र और मानव-विज्ञान :

समाजशास्त्र और मानव-विज्ञान अन्य सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा इतिहास के अधिक निकट हैं। समाजशास्त्र का सम्बन्ध आधुनिक समाज से है तथा मानव-विज्ञान का आदिम जातियों से। युग की नई समस्याओं के समाधान हेतु इतिहास को भी

समाजशास्त्र और मानव-विज्ञान की नई पद्धतियों का सहारा लेना पड़ता है । समाजशास्त्र और मानव-विज्ञान का इतिहास पर प्रभाव सामान्य प्रकार का है । आदिम और उन्नत जातियों के मिलन से सांस्कृतिक संक्रमण होता है । अफ्रीका जैसे देश में लिखित सामग्री प्राप्त नहीं होती । वहां साधारण लोगों की ऐतिहासिक सामग्री अत्यंत अल्प ही मिलती हैं । परिवार, विवाह, जनसंख्या की गतिशीलता, अल्पसंख्यक समूह, सामाजिक समूह, भूमि-स्वामित्व, राजा और सामंत के सम्बन्ध, स्वामी और नौकर के सम्बन्ध, पुजारी और अनुयायी, अकाल और बीमारियों के प्रकरणों का महत्व केवल सामाजिक विज्ञानों के लिए ही नहीं किंतु इतिहास के लिए भी है । इन सामाजिक विज्ञानों की शोध पद्धतियों का प्रयोग इतिहास में भी किया जाता है । समाजशास्त्र और मानव-विज्ञान के समान इतिहास में भी सामग्री उपलब्ध नहीं होने पर कभी-कभी वैकल्पिक साधनों से एकत्रित करनी पड़ती है । तकनीक सामग्री का संकलन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण सावधानी से करना चाहिए । इतिहास में भी तथ्यों का चुनाव तथा अर्थ के आधार पर प्रत्यक्ष और प्रकल्पना का प्रयोग किया जाता है । आनुभाविक ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर जो विशिष्ट प्रत्यय उपस्थित होते हैं उनकी सर्वव्यापी मान्यता होती है । मानव-विज्ञान में कुछ कथन सर्वव्यापी हैं, जैसे प्रत्येक संस्कृति में किसी न किसी प्रकार का धर्म होता है, तथा कौटुम्बिक व्यभिचार में रोक होती है । कभी-कभी विशेष समाज और विशिष्ट काल के प्रत्ययों का प्रयोग भी किया जाता है, जैसे नगर, नौकरशाही और पूंजीवाद । समाजशास्त्र में कथात्मक विवरण के व्यवस्थित विश्लेषण द्वारा विभिन्न प्रतिरूप (मॉडल) तैयार किये जाते हैं । इतिहासकार ऐतिहासिक प्रमाण का अर्थ लगाने में भी इनको प्रयोग कर सकता है । मात्रिक विश्लेषण द्वारा इतिहास में भी सामान्य कथनों की जाँच होती है ।

4.5.2 मनोविज्ञान :

इतिहास का मनोवैज्ञानिक पक्ष भी होता है किंतु वह प्रत्यक्ष नहीं है । मनोविश्लेषण मनोविज्ञान की इतिहास को बहुत बड़ी देन है । सामान्य परिणामों पर पहुँचने के लिए पहिले समस्त समस्या पर विचार करना पड़ता है । ऐतिहासिक सामग्री में मनोविश्लेषणात्मक प्रत्यय खोजना संदेहास्पद है किंतु उसको मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार करना चाहिए । आनुभाविक शोध के परिणामस्वरूप इतिहास में मनोवैज्ञानिक प्रत्ययों का प्रयोग होता है ।

मनोविज्ञान व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों होता है । व्यक्तिगत मनोविज्ञान के क्षेत्र ने भी इतिहासकारों के ध्यान को आकृष्ट किया । लूथर और महात्मा गांधी जैसे महान लोगों का इतिहास को बड़ा योगदान रहा है । इन महापुरुषों की जीवन का इतिहास से महत्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है । मनोविश्लेषण व्यक्ति के लिए ऐतिहासिक घटना के महत्व के समझाने में सहायक होता है । इतिहास के लिए हिटलर का व्यक्तिगत मनोविज्ञान वास्तविक प्रश्न नहीं है, किंतु जर्मन समाज की परिस्थिति, जिसके कारण उसकी शक्ति बड़ी और 1945 तक उसे बनाये रखा, ये अधिक महत्वपूर्ण है ।

ऐतिहासिक प्रश्नों के विश्लेषण करने में व्यक्तिगत मनोविज्ञान की अपेक्षा सामाजिक मनोविज्ञान का अधिक महत्व है । इतिहास में वर्ग-व्यवहार, सामूहिक हिस्टोरिया, सामूहिक चेतना और अविवेकी शक्तियों के अध्ययन हेतु मनोविज्ञान से प्रेरणा मिलती है । सामाजिक मनोविज्ञान आधुनिक विश्व की विशिष्ट समस्याएं और प्रपंच जैसे - हिंसा, समग्रवाद (Totalitarianism) जातीय विरोध और क्रांति को वर्ग-मनोविज्ञान और वर्ग-व्यवहार के रूप में समझने और विश्लेषण हेतु आनुभविक शोध से सम्बन्धित है । इतिहास का सम्बन्ध केवल सामूहिक व्यक्तित्व से न होकर सामूहिक शक्तियों से है, जो समाज के जीवन का निर्माण करती हैं । इतिहास राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद से सम्बन्ध रखता है । मनोविज्ञान का इनके मूल से सम्बन्ध है तथा साथ में तनाव से भी ।

मनोविज्ञान का सम्बन्ध न केवल आधुनिक इतिहास से किंतु भूतकाल से इतिहास से भी होता है । मनोविज्ञान से ही अप्रत्यक्ष रूप से पता लगाया जा सका है कि यूनानी धर्म और संस्कृति में अविवेकी तत्व हैं तथा मूल निवासियों तथा उपनिवेशियों में विरोध रहता है ।

4.5.3 अर्थशास्त्र:

अन्य सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा अर्थशास्त्र का इतिहास को महत्वपूर्ण योगदान है । आर्थिक परिवर्तनों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अर्थशास्त्र ने इतिहास को बहुत प्रभावित किया । आदमस्मिथ रिकार्डो तथा कार्लमार्क्स के समय ऐतिहासिक परिवर्तनों के निर्धारण में आर्थिक कारणों का महत्व रहा है । यदि इतिहास द्वारा मनुष्य का आर्थिक उत्थान समझना है तो उसके पास आवश्यक सैद्धांतिक और सांख्यिकीय साधन उपलब्ध होने चाहिए । बिना मुद्रा की मात्रा के सिद्धांत (Quantity Theory of Money) के सोलहवीं सदी के इंग्लैंड में कीमतों की तेजी को नहीं समझा जा सकता । अमेरिका में गृहयुद्ध के पहिले गुलामी प्रथा ने तथा अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए रेलवे ने इतिहास को भी प्रभावित किया । विश्व की महत्वपूर्ण घटनाएं जैसे 1929 की महा मंदी तथा 1945 की न्यूडील की नीतियां बिना सम्बन्ध आर्थिक सिद्धांत जाने नहीं समझी जा सकती ।

अन्य सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा आधुनिक समय में अर्थशास्त्र की सामग्री, जैसे - कर-सूची, कीमतों का ब्यौरा, वेतन, गणना विवरण, सीमा शुल्क और चुंगी, अधिक प्राप्त होती है । राज्य सरकार तथा अन्य एजेंसियों के अधिकार में ऐसी सामग्री उपलब्ध है । पारंपरिक आर्थिक इतिहास के उपाय ऐसी सामग्री के लिए ठीक नहीं है । आर्थिक इतिहास के लिए इस सामग्री का सैद्धांतिक तथा सांख्यिक विश्लेषण ठीक ढंग से हो सकता है । नये आर्थिक इतिहास निर्माण हेतु प्रामाणिक पद्धतियों जैसे सांख्यिक तथा मात्रिक विश्लेषण का महत्व पर्याप्त है । नये आर्थिक इतिहास (New Economic History) की मुख्य विशेषता है - परिकल्पित निगमनिक प्रत्ययों (Hypothetico-Deductive Models) का प्रयोग जो गणित की शब्दावली में

अथमिति (Econometrics) के नाम से जाना जाता है। विभिन्न प्रत्यय जो संघटक तत्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं, आर्थिक परिवर्तन के संकेत हैं। इन प्रत्ययों से नई बातें जैसे रेलवे और बैंक द्वारा आर्थिक विकास के प्रभाव को बताना भी है। नये आर्थिक इतिहास की मुख्य उपलब्धि है - एक तरह स्थाई आर्थिक विश्लेषण से ऐतिहासिक परिवर्तन की धीमे और स्थिर विकास तथा दूसरी तरफ इसके द्वारा नाम और सिद्धांत पर जोर दिया जाना अर्थशास्त्र का सजातीय विषय ऐतिहासिक जनांकिकी (Historical Demography) है। आर्थिक इतिहास के लिए इसकी आवश्यकता है। 1950 में इसका उद्गम हुआ था। इसके लिए पहले इतिहासकारों द्वारा हुई जो आर्थिक विकास हेतु आर्थिक और जनांकिकी समस्याओं को सुलझाना चाहते हैं।

पारम्परिक जनांकिकी का सम्बन्ध केवल लोगों के जन्म एवं मृत्यु से है, किंतु ऐतिहासिक जनांकिकी का जनसंख्या की गतिशीलता से है। ऐसे प्रकरण आज के युग में अनेक हैं, जैसे- जनसंख्या, जन्म-दर की प्रवृत्ति (Propensity), परिवार, विवाह और मृत्यु, ग्रामों और वर्गों में लोगों की व्यवस्था, औद्योगिक क्रांति के पहिले जनसंख्या की स्थिरता और बाद में विकास और समाजों की जनसंख्या में भिन्नता का स्वरूप। ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया की आर्थिक पृष्ठभूमि होती है। देर से विवाह की शुरुआत इसी कारण से हुई। जनसंख्या के स्त्रोतों की अनुकूलता तथा बचपन से समृद्धि होती है। आर्थिक उत्थान के लिए मनुष्यों ने विवाह स्थगित करना भी प्रारंभ किया।

ऐतिहासिक जनांकिकी से सम्बन्धित अन्य पहलू बीमारी और अकाल का प्रभाव, कृषि जनसंख्या, शिशु मृत्यु संख्या, समाज व जनसंख्या की गतिशीलता और नगर और ग्राम का सम्बन्ध आदि भी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इन सबका महत्व है। परिवार नियोजन भी इसी के अन्तर्गत आता है।

जनगणना सत्रहवीं से उन्नीसवीं सदी तक केवल फ्रांस और इंग्लैंड में ही होती थी। ऐतिहासिक जनांकिकी का प्रयोग सत्रहवीं सदी के पहिले इंग्लैंड और फ्रांस के इतिहास हेतु तथा अन्य देशों के लिए भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसी सामग्री उपलब्ध नहीं है। मात्रिक विश्लेषण के प्रयोग ऐतिहासिक जनांकिकी के लिए भी होता है। नया आर्थिक इतिहास (New Economic History) और जनांकिकी इतिहास की महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं।

4.5.4 राजनीति-शास्त्र:

इतिहास और राजनीतिशास्त्र दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के अभाव में दूसरे का अध्ययन निरर्थक एवं सारहीन है। इतिहास भूतकालीन राजनीति है, और राजनीति वर्तमानकालीन इतिहास। आधुनिक राज्य ऐतिहासिक विकास का ही परिणाम है। इतिहास में हमें भूतकालीन घटनाओं का वर्णन मिलता है। ये घटनाएं आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक हो सकती हैं। राजनीतिशास्त्र को राजनैतिक संस्थाओं के अध्ययन के लिए इतिहास की शरण लेनी पड़ती है। सीले के अनुसार राजनीतिशास्त्र जब तक इतिहास से सम्बन्धित नहीं रहता, तब तक वह एक निकृष्ट

विषय है और इसी प्रकार यदि इतिहास राजनीति से अपना सम्बन्ध तोड़ ले तो वह केवल एक कथा मात्र बन कर रह जाता है ।

यदि राजनीति इतिहास पर निर्भर है तो इतिहास भी राजनीति पर आधारित है । राजनीति की सहायता लेकर इतिहास कुछ सिद्धांतों को बनाता है । राजनैतिक संस्थाएं, राजनैतिक विचारधाराएं और राजनीतिक आन्दोलन इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री तैयार करते हैं । उन्नीसवीं सदी के यूरोप के इतिहास का कोई भी वह विवरण अपूर्ण ही रहेगा जब तक कि व्यक्तिवाद, समाजवाद, राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद आदि राजनीतिक विकासों के ज्ञान से उसकी पूर्ति नहीं हो जायेगी । इसी तरह भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास के सिलसिले में शासन सुधार सम्बन्धी अधिनियमों, साइमन कमीशन, गोलमेज सम्मेलनों, क्रिप्स प्रस्तावों, साम्प्रदायिक पंचाट, केबिनेट मिशन घोषणा आदि बातों की चर्चा आवश्यक है । राजनीतिक घटनाओं का विश्लेषण और विवरण के बिना इतिहास की सामग्री का वास्तविक मूल्य नहीं रहेगा । 1917 की रूसी क्रांति ने रूस के इतिहास पर जो प्रभाव डाला, वह सर्वविदित है ।

इतिहास और राजनीति में घनिष्ट सम्बन्ध होते हुए भी आधार-भूत भेद भी है । इतिहास एक वर्णनात्मक विषय है । उसमें घटनाओं का वर्णन होता है । राजनीति में नैतिक और दार्शनिक आधार होते हैं । इतिहास का क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है और उसकी तुलना में राजनीतिशास्त्र का क्षेत्र पर्याप्त संकुचित कहा जा सकता है । इतिहास का सम्बन्ध घटनाओं के वर्णन से होता है, किंतु राजनीति- शास्त्र इन घटनाओं से कई परिणाम निकालकर उन्हें विस्तृत रूप भी देता है । इतिहास का सम्बन्ध उस राज्य से है जैसा कि वह रहा है । राजनीति का सम्बन्ध ऐसे भी राज्य से है जैसा कि उसे होना चाहिए । इतिहास की विषय-वस्तु भविष्य में दूसरे विषयों द्वारा पूरी तरह निगली भी जा सकती है किंतु राजनीति को ऐसा कोई डर नहीं है । उसका क्षेत्र तो भविष्य में विस्तृत होगा, जिसमें अन्य विषय हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे ।

4.5.5 भूगोल:

भूगोल को भी सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत रखा जा सकता है और इसका इतिहास से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है । देश के इतिहास पर उसके पर्वत, नदियाँ, रेगिस्तान, जंगल, समुद्र, खनिज पदार्थ, भूमि और जलवायु का प्रभाव पड़ता है । भौगोलिक परिस्थितियों से न केवल राजनैतिक किंतु सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास का भी निर्धारण किया जाता है । भारत का स्थानीय इकाइयों में समय-समय पर विभाजन प्रायः भौगोलिक कारणों से हुआ । हिमालय पर्वत ने भारत की विदेशी आक्रमणों से रक्षा की । पर्वतों के कारण हमेशा युद्ध और झगड़े हुए । नदियों के किनारे तथा मैदानों में सभ्यताएं और साम्राज्य बने, पनपे और बिगड़े । राजस्थान के लोग प्रायः अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध रहे और समय-समय पर शत्रुओं का सामना किया । अफ्रीका अपनी गरम जलवायु के कारण अभी बीसवीं शताब्दी तक अंध-महाद्वीप बना रहा । साम्यवादी

चीन ने ऐतिहासिक मेकमोहन सीमारेखा का उल्लंघन कर हमारे देश पर जो आक्रमण किया, उसके पीछे भौगोलिक कारण थे ।

भारत में आदिम जाति के लोग लम्बे समय से जंगलों तथा पहाड़ों की निर्जन घाटियों में अलग से बसे रहे । इस कारण वे सांस्कृतिक ढंग से पीछे रहे । नगरों की स्थापना के पीछे भी भौगोलिक कारण रहे । मार्गों का भी भौगोलिक महत्व रहा है । कला की शैलियों के नाम स्थानीय रहे । भारतीय भाषाएं भी स्थानीय विशेषताएं लिये हुए हैं । साहित्य और दर्शन के उत्थान के विशेष स्थान रहे हैं । भूगोल का प्रभाव लोगों के खान-पान, वस्त्र, स्वभाव, रीति-रिवाज, आमोद-प्रमोद आदि पर पड़ा । ठण्डे देश के लोग चुस्त होते हैं तथा गरम जलवायु के निवासी सुस्त पाये जाते हैं ।

आधुनिक समय में विज्ञान की प्रगति भौगोलिक परिस्थितियों को बदल रही है । संसार के प्राकृतिक साधन सभी राज्यों के लिए सुलभ होने लगे हैं । अंतरिक्ष यात्राएं भूगोल का स्वरूप बदल रही हैं, जिनका प्रभाव आज की राजनीति पर गम्भीरता से पड़ रहा है । आवागमन के सुलभ साधन जैसे रेल्वे और हवाईजहाज के कारण दूरी को जीत लिया गया है और विश्व को एक करने का प्रयास किया जा रहा है । वैज्ञानिक साधनों से रेगिस्तान को भी हरा-भरा किया जा सकता है । इन सबका इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ रहा है ।

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न:

- (i) उन्नीसवीं सदी में इतिहास और सामाजिक विज्ञान के स्वरूप एवं प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिये ?
- (ii) बीसवीं सदी में इतिहास और सामाजिक विज्ञान के स्वरूप एवं प्रवृत्तियों की व्याख्या कीजिये?
- (iii) इतिहास का समाज विज्ञान के विभिन्न विषयों के साथ क्या सम्बन्ध है ?

4.7 संदर्भ ग्रन्थ:

- (i) Heool GW : Lectures on Philosophy of History
- (ii) Carr E.H. : What is History ? (Also in Hindi)
- (iii) Collingwood R.G. : Idea of History.
- (iv) गोविन्द चन्द्र पाण्डे : इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत
- (v) बुद्ध प्रकाश : इतिहास दर्शन

MAHI-04/ISBN13/978-81-8496-263-5